रोगिमृत्युविज्ञानम्

लेखकः—

महामहोपाध्यायः पं० मथुराप्रसाददीक्षितः

रोगिमृत्युविज्ञानम्

लेखकः—

महामहोपाध्यायः

पं० मथुराप्रसाददीक्षितः

द्वितीयावृत्तिः] सं० २०२२ [मूल्यम् १॥)

म० म० दीक्षितजी की अन्य रचनाएं

१. **पाणिनीयसिद्धान्तकौमुदी**—यह वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीका प्रक्रियात्मक अंश है। इसमें से फक्किका, प्रत्युदाहरण और लम्वी वृत्ति हटा दी है। अतः इससे व्याकरण का बोध केवल एकवर्ष में पूरा हो जायगा। इसमें सूत्र,वार्तिक और उदाहरण मात्र हैं। सूत्रार्थ ही तो वृत्ति है, अतः सूत्रसे ही सूत्रार्थ-प्रतीति होने से उसकी वृत्ति सर्वथा हटा दी है। अनुवृत्तिमात्र वृत्ति दी गई है। परीक्षार्थी छात्रों के लिये परमोपयोगी है। केवल पूर्वार्ध में ५० पत्र हैं। **अतः दो घण्टे प्रतिदिन पढ़ने** से केवल ६ मास में कौमुदी कण्ठस्थ हो जाती है। एवं व्याकरण करामलकवत् भासित हो जाता है। **"कौमुदी यदि कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः।"** जनता में प्रसिद्धि के लिए मूल्य व्ययमात्र ३।।)

२. **पालि प्राकृत व्याकरण**—इसमें केवल ७० सूत्र हैं। प्रतिदिन केवल २० मिनट ५ सूत्रों का अनुगम करने में पाली प्राकृत का १५ दिन में विद्वान् हो जाता है। प्रत्येक के २०–२० उदाहरण भी दिये गये हैं। इसके पढने के वाद नाटकों के प्राकृत की संस्कृत छाया देखने की आवश्यकता नहीं रहती है। कौन हिन्दी शब्द किस संस्कृत के स्वरूप से आय है? यह अपूर्व ज्ञान हो जाता है। इस पुस्तक में मानों गागर में सागर भर दिया गया है। मूल्य १।।)

३. **भारतविजय नाटक**—इसमें पाश्चात्य गवर्नमेंट के पूरे अत्याचार झाँसी की रानी का युद्ध, कांग्रेस आन्दोलन, कांग्रेसियों के दुःख, जलियाँ वाले वाग के अत्याचार और अन्त में महात्मा गान्धी जी के हाथों में स्वराज्य देकर पाश्चात्य गवर्नमेंट के जाने का अभिनयात्मक दृश्य है। इसमें आठ चित्र हैं, उससे ही सब घटनाओं का ज्ञान हो जाता है। साथ में हिन्दी अनुवाद है। तीन सरल अभिनेय गान हैं। मूल्य २।।)

४. **शङ्करविजय नाटक**—इसमें श्रीशङ्कराचार्यजी का सभी दार्शनिकों से, नास्तिकों से, मीमांसकाचार्य मण्डन मिश्र तथा उनकी स्त्री से, एवं जैन, बौद्ध, कापालिकों से परमरोचक शास्त्रार्थ वर्णन है। दर्शन शास्त्रों के ज्ञान में परमोपकारी है। मूल्य १)

५. **भक्त सुदर्शन**—देवीभागवत से उद्धृत आस्तिकता को दृढ करनेवाला काशीस्थ दुर्गादेवी का ऐतिहासिक वीररसात्मक यह अपूर्व नाटक है। इसमें ९ दर्शनीय तिरङ्गे चित्र हैं। ६ अङ्क हैं। केवल चित्रों के ही २) रु० हो जाते हैं। इसकी कविता सरल, रोचक है। एकवार आरम्भ करके पूरा पढ़ने को जी चाहता है। इसकी उपादेयता पर यू० पी० गवर्नमेण्ट ने ८००) पारितोषिक दिया है। एकवार अवश्य देखें। मूल्य २) रु०।

६. **गान्धी विजय**—श्री महात्मा गान्धी के नैटाल, चंपारन और भारत के स्वराज्य प्राप्ति के आन्दोलन-प्रकार और उसमें प्राप्त दुःख व सफलता का वर्णन है। इसमें प्राकृत के स्थान पर हिन्दी है। मूल्य ॥)

७. **वीरपृथ्वीराजविजयनाटक**—परम प्राचीन अतिजीर्ण फोटो पर से लिया गया 'गेटो' इसका मूल है। इसके साहाय्य से निर्मित होने के कारण इसमें प्रक्षिप्त अंश जो कि पन्द्रहवीं सदी में हुआ है, नहीं है। अतः सिद्ध है कि यह चौदहवीं सदी की पुस्तक है। हिन्दी अनुवाद सहित प्रथमावृत्ति। मूल्य केवल १)

८. **रोगिमृत्युविज्ञान**—रोगी को देख कर उसके अरिष्टात्मक चिन्हों से उसकी मृत्यु के समय का निर्णय कर सकते हैं। यह वैद्यक शास्त्र की अपूर्व पुस्तक है। मूल्य केवल १॥)

९. **केलिकुतूहल**—वैद्यक शास्त्र का होते हुये भी काम शास्त्र का अपूर्व ग्रन्थ है। प्रत्येक गृहस्थ को पाठनीय है। मूल्य १॥)

—०—

म० म० पं० मथुराप्रसाद दीक्षित

निर्मित अद्भुत अपूर्व ग्रन्थ

❋ केलिकुतूहल ❋

समस्त गृहस्थों के लिए उपयोगी दीक्षितजी का अद्‌भुत अपूर्वग्रन्थ **केलिकुतूहल** वैद्यक शास्त्रीय विषयों से युक्त होते हुए भी कामशास्त्र का अपूर्व ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में सोलह तरङ्ग हैं। इसका प्रत्येक तरङ्ग युवावस्थोन्मुख मनुष्य के लिये परमोपकारी लाभदायक स्वास्थ्य-वर्धक, तारुण्यसंरक्षक है।

१—प्रथम तरङ्ग में उद्देश्य आदि वर्णनानन्तर तारुण्योन्मुख बालकों में जो हस्तकर्म, पुंमैथुनादि दोष पड़ जाते हैं। जिस से नपुंसकता, ध्वजभङ्गादि हो जाने से जीवन भारभूत हो जाता है, दाम्पत्य सुख समूल नष्ट हो जाता है और लघुपाती हो जाता है, जिस से न स्त्री सुखी रहती है और न स्वयं सुख पाता है, उन दोषों का वर्णन है और उससे हटने की, उस दोष में न प्रवृत्त होने की शिक्षा है।

२—द्वितीय तरङ्ग में, दैवात् यदि किसी में उक्त आदत लग जाय और उससे ध्वजभङ्गादि दोष उत्पन्न हो जाँय तो उस के प्रतीकार के लिये अनेक प्रकार के तिला लेप आदि प्रयोगों का वर्णन है।

३—तृतीय तरङ्ग में लघुपातित्वादि दोष निवृत्ति के लिये अद्‌भुत परमोपकारी सर्वसाधारण के निर्माण योग्य अनेक चूर्ण मोदक आदि के बनाने का प्रकार और उनकी सेवनविधि का वर्णन है, जिससे वह पूर्वापेक्षया भी अधिक शक्तिशाली चिरसेवी सुखी हो जाता है।

४—चतुर्थ तरङ्ग में सुगम लेपादि द्वारा पुंस्तम्भन, स्त्रीद्रावण का निरूपण किया गया है।

५—पञ्चम तरङ्ग में पद्मिन्यादि भेद, उनके लक्षण, स्वरूपादि का परिज्ञान कराया गया है।

६—षष्ठ तरङ्ग में कामाङ्कुशादि के समासमत्व में सुखासुख वर्णन, शश-हस्तिनी के योग हो जाने पर सर्वथा सुखोत्पादक प्रकारों का वर्णन एवं वातपित्तादि प्रकृतिभेद से साध्यासाध्य स्त्रियों का वर्णन है।

७—सप्तम तरङ्ग में पूर्वजन्मगत देवादि सत्वों का निरूपण है, अर्थात् किस पूर्वजन्म से इसकी उत्पत्ति हुई है, इसका निरूवण है। एवं अन्यमतों का खण्डन स्वपक्ष-स्थापन है।

८—अष्टम में वन्धप्रभेदनिरूपण है।

९—नवम में उष्णा, शिशिरा, भूतादिनिवेशितादिक सात प्रकार की वन्ध्याओं का वर्णन और उसके उपायों का निरूपण हैं।

१०—दशम तरङ्ग में सन्तानकर परंपरानुभूत ३६ छत्तिस योगों (औषध) का वर्णन है। प्रत्येक योग निश्चित लाभदायक संतानकर हैं। प्रकृति-भेद से यदि एक प्रकार से कार्य सिद्ध न हो तो दूसरा तीसरा आदि अवश्य करें।

११—ग्यारहवें में वेश्याओं के भेद और उनके कुकृत्यों का वर्णन, स्वभावत: प्रवृत्त पुरुषों के स्वरूप का निरूपण भी हैं।

१२—वारहवें में वेश्या प्रसक्त पुरुष के उनसे छड़ाने के उपाय, पुरुषों की प्रकृत्यादि का वर्णन है।

१३—तेरहवें में, उपदंशादि का इतिहास, वेश्यादिजन्य उपदंश, सूजाक के शतश: अनुभूत उत्कृष्ट योग, नवीन प्राचीन सर्वप्रकार के उपदंशादि की परमोत्कृष्ट औषध, एवं पुरुष के पेशाव में वीर्य-स्राव, स्वप्नदोष और स्त्री के सव प्रकार के प्रदर आदि की अनुभूत उत्तम औषध।

१४—चौदहवें में दत्तात्रेयोक्त, और अन्य प्रकार के भी वशीकरणादि योग।

१५—पन्द्रहवें में संतति निग्रह, वन्दारुकल्प, नालपरिवृत्ति, दंशमत्कुण नाशक औषध योग है।

१६—सोलहवें में योगशास्त्र और कामशास्त्रके संबन्ध-समन्वय का वर्णन है।

※ प्राक्कथन ※

रोगिमृत्युविज्ञान इस अन्वर्थ नाम से ही इसमें प्रतिपादित विषय स्पष्ट हो जाता है। रोगी की चेष्टा, शरीर में उत्पन्न चिह्न, उसके व्यापार और दूसरे जीवों का सहयोग वियोगादि देख कर उसके मृत्यु समय को वता देना, यही इसका मुख्य विषय है। रोगी के मृत्यु-समय के वर्ष, मास, दिन और समय आदि जानने या वताने में तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न, राशि आदि की अपेक्षा नहीं है; अतः संदिग्ध ज्ञानवोधक ज्योतिषशास्त्र का यह विषय नहीं है; किन्तु निश्चयात्मक निर्णीत ज्ञान को यह वता देता है, अतः यह विज्ञान ही है। भावमिश्र जी ने स्पष्टतः इस 'अरिष्ट' का स्वरूप वताते हुए कहा है कि "नियतमरणख्यापकं लिङ्गमरिष्टम्" डंके की चोट पर जो चिह्न मृत्यु को वता दे, यही तो विज्ञान है। इसका व्रर्ण्य विषय जैसे—

जिस स्नातानुलिप्त स्वच्छ मनुष्य के शरीर पर सर्वतः मक्षिकादि पड़े अथवा शरीर पर पिपीलिका बड़े मुख वाले चींटा आदि दौड़े, काटे, वह तीन मास के अन्दर मर जाता है। एवं जिसका शरीर स्नानानन्तर समस्त खुस्क हो जाय अर्थात् मारे शरीर का पानी या लगाया हुआ चन्दन सूख जाय; किन्तु मस्तक और हृद्गत चन्दन न सूखे, वह केवल एक वर्षमात्र जीवित रहता है। जो रोगी वैद्य के समक्ष अज्ञानपूर्वक अपने विस्तरे पर अथवा पार्श्वस्थ भित्ति पर खोई हुई वस्तु के समान कुछ अपने हाथों से ढूँढ़े, वह निश्चय से तीन दिनों के अन्दर मर जायगा, इत्यादि ज्ञान सभी वैद्यों के लिये परमोपकारी है। उक्त प्रकार के लक्षणों का इसमें वर्णन है। यह अपूर्व ग्रन्थ चरक-सुश्रुत वाग्भटादि आर्ष ग्रन्थों के तथा परंपरानुगत अनुभूत निश्चयात्मक ज्ञान के आधार पर बनाया गया है।

इसका हिन्दी अनुवाद स्वयं मूल ग्रन्थकर्ता महामहोपाध्याय दीक्षित जी ने ही किया हैं, वैद्योंको पुस्तक मँगाने में शीघ्रता करनी चाहिए। अन्यथा तृतीयावृत्ति की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

आयुर्वेद-सन्देश संपादक वैद्यराज सुरेन्द्रनाथदीक्षित

विषय-सूची

—: ० :—

रोगि-मृत्यु-विज्ञान

लोकेश्वरं गुरुं नत्वा मातरं पितरं शिवम् ।
मृत्युदर्पणविज्ञानं क्रियते लोकभाषया ॥

मंगलाचरणम्

यस्या दर्शनतो भृशं विजयते चिद्रूपता चेतने,
स्वात्मानन्दसमुद्रलोललहरी संजायते सर्वदा ।
नित्या सर्वसरूपतामनुगता संसारसौख्यप्रदा
ब्रह्माभेदवहा सती भगवतः सा भासते पत्प्रभा ॥ १ ॥

हिन्दी—यस्या इति । जिस भगवान् की पदप्रभा के दर्शन से मन में अत्यन्त प्रकाशमान, अपनी आत्मा में आनन्द-समुद्र की सदा लहरें उत्पन्न रहती हैं, नित्य एवं समस्त स्थावरजंगमात्मक वस्तुस्वरूप अर्थात् स्वात्मानन्दात्मक चित्स्वरूप ही समस्त वस्तुस्वरूप है, नित्य समस्त वस्तुओं की समानता को प्राप्त सांसारिक सुखों की देनेवाली सती सर्वदा प्रत्यक्ष स्वरूपतया भासमान ब्रह्म से अभिन्न अर्थात् ब्रह्म-स्वरूप वह भगवान् के चरणों की प्रभा भासमान है ॥ १ ॥

मेरे बनाये हुये कवितारहस्य में भगवान् की पद-प्रभा का पचीस श्लोकों में नवीन-नवीन प्रकार से वर्णन है, उसका प्रत्येक श्लोक प्रत्येक ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में है, यह पन्द्रहवां ग्रन्थ है ॥

अधीत्य वाग्भटं भावप्रकाशं सुश्रुतक्रियाम् ।
चरकं चानुसृत्यैव मरणज्ञानमुच्यते ॥ २ ॥

चिकित्सां समतिक्रान्ताः केवलं देहमाश्रिताः ।
लिङ्गं कुर्वन्ति यद्दोषास्तदरिष्टं प्रचक्षते ॥ ३ ॥

तत्रादावरिष्टलक्षणं विचार्यते । किन्नामारिष्टत्वमिति चेदुच्यते । 'चिकित्सां समतिक्रान्ताः केवलं देहमाश्रिताः, लिङ्गं कुर्वन्ति यद्दोषास्तदरिष्टं प्रचक्षते' एवं च चिकित्साविषयानधिकरणत्वे सति वातपित्तकफाश्रयीभूतज्वरादिजनितदेहमात्राश्रितलिङ्गत्वमरिष्टत्वम् ।

यत्तु नियतमरणाख्यापकं लिङ्गमरिष्टम्, यथा हिक्काश्वासादय इत्युक्तं केनचित्तदसत् । हिक्काश्वासादीनामुपद्रवरूपतया नियतमरणाख्यापकत्वाभावात् । क्वचिन्मरणजनकत्वेऽपि अनुगतरूपतया हिक्काश्वासादीनां तथात्वाभावात् । किञ्च हिक्काश्वासादिरूपारिष्टतया जायमाने मृत्यौ मृत्युदिनानामज्ञानात्तज्ज्ञानस्यानुपयोगाच्च । क्वचिदुपद्रवतया जायमाने हिक्काश्वासादौ रोगिणस्त्यागे तद्रोगोपशमाच्च दुर्यशःप्राप्तेश्च । अपि च यक्ष्मादौ श्वासादीनामुपद्रवस्वरूपतयैव प्रदर्शनात् । किञ्च मरणानन्तरमेव नैयत्येन मरणाख्यापकत्वं निश्चीयते इति तदपि न । किमत्र पूर्वं निश्चयेन मरणाख्यापकत्वं तल्लिङ्गस्योच्यते उत मरणानन्तरं तल्लिङ्गं मरणजनकं निश्चीयते । आद्ये तु न विवादः । परं तु भवदुक्तरीत्या तज्ज्ञानस्यासमर्थनात् । द्वितीयपक्षे च मरणानन्तरं तज्ज्ञानस्याकिञ्चित्करत्वात् । ननु व्यवहारेण तत्र तत्रारिष्टावलोकनान्मरणजनकताया निश्चयो भविष्यतीति चेन्न, तत्तद्विधानामरिष्टानां तत्तद्रोगेषु निश्चयकरणे बहुतरकालस्यावश्यकत्वादन्तरैव दुर्यशः प्राप्त्यापत्तेः, तथा च सति रोगिणां भवदुक्तौषधादौ प्रवृत्तिरेव न स्यात् । गुरुपरंपरयेति चेत्तर्हि तल्लक्षणं तज्ज्ञानाय वक्तव्यमेव । किञ्चारिष्टज्ञानमन्तरा किमयं केनापि मदीयदोषेण मृतः, उत रोगप्रबलतयेति संशयोऽपि स्यात् । अपि च भवदुक्तलक्षणे नियतपदस्याव्यावर्तकत्वान्नैरर्थक्यमपि स्यात्, न खलु नियतमनियतं वा मरणमुपलभ्यते इति चेन्न,अस्मदभिप्रायापरिज्ञानात । नह्यस्माभिर्नियतमिति मरणस्य विशेष-

णमुच्यते किन्तु मरणाख्यापकत्वस्य, मरणस्य निश्चयेन बोधकत्वमिति तदर्थः। एवं च एतच्चिह्नदर्शनेन इयता कालेनावश्यमस्य मृत्युर्भविष्यतीति शब्दार्थः, एवमपि नियतपदं व्यर्थमेव, तस्याव्यावर्तकत्वात्। किञ्च नियतमरणाख्यापकं लिङ्गमरिष्टमित्युच्यमाने वातपित्तकफाश्रयीभूतोपद्रवाणामरिष्टत्वापत्तेः, एतेषामपि यथाकथंचिन्मरणाख्यापकत्वात्। नचोपद्रवाणां नैयत्येन मरणाख्यापकत्वं नास्तीति वाच्यम्, उपद्रवाणां मरणजनकतया तदनाख्यापकत्वात्, इति चेन्न, एकस्योपद्रवस्य नियतमरणाख्यापकत्वं न भवेत्, परं तु उपद्रवसमुदायस्य मरणाख्यापकत्वमस्त्येव। यथा यक्ष्मिणः क्षीणबलत्वे सति कासश्वासारुच्याद्येकादशोपद्रवाणां नियतमरणाख्यापकत्वादतिव्याप्त्यापत्तेः। किञ्च नियतमरणजनकत्वे यथा कथंश्चिन्मरणाख्यापकत्वादतिव्याप्त्यापत्तेश्चेति दिक्।

तस्मात् चिकित्सानुपशमनीयत्वे सति दोषजन्यदेहमात्राश्रितलिङ्गत्वमरिष्टत्वमिति सुसंपन्नं लक्षणमवगन्तव्यम्। पदकृत्यमाह। आद्यपदोपादानात् उपद्रवेषु चक्षूरोगे च नातिव्याप्तिः। ननूक्तमेव भवता राजयक्ष्मणि उपद्रवाणां चिकित्सानुपशमनीयत्वेन नियतमरणाख्यापकत्वमस्त्येवेति चेन्न अस्मदभिप्रायापरिज्ञानात्, न ह्यस्माभिर्यावद्रोगेषु उपद्रवाणामनुपशमनीयत्वं मरणाख्यापकत्वं वा मन्यते राजयक्ष्मिण्यपि क्षीणबलस्य वमनविरेचनाद्यभावाज्जायमानैकादशोपद्रवाणां दुश्चिकित्स्यतया यक्ष्मिणोऽसाध्यत्वम्, तेन मरणाख्यापकत्वमिति त्वन्यत्। किञ्च तत्रैव यावदुपद्रवाणां चिकित्सानुपशमनीयत्वं नास्ति, किंतु कस्यचिदुपद्रवस्योपशमदर्शनादिति दिक्। दोषजन्येत्युपादानाच्छुभसूचकभुजचक्षुषोः स्फुरणे, द्रव्यप्राप्तिसूचकसक्थिश्यामतायां च नातिव्याप्तिः। देहमात्राश्रितेत्युपादानादुपद्रवसमुदाये नातिव्याप्तिः। ननु उपद्रवाणां चिकित्सानुपशमनीयत्वं नास्तीति चेन्न, अपर्याप्त्या चिकित्सोपशमनीयत्वेऽपि पर्याप्त्या चिकित्सानुपशमनीयत्वात्, अर्थात् कस्मिंश्चिदेकस्मिन् रोगे जायमानस्योपद्रवसमुदायस्य चिकित्सानुपशमनीयत्वात्समुदायेऽतिव्याप्तेः। वस्तुतस्तु महाश्वासादौ शापादिना जायमानो-

पद्रवादौ जन्मप्रभृतिजायमानेषु रोगेषु च नातिव्याप्तिः। ननु अन्तिम-पदोपादानं किमर्थम्? चिकित्सानुपशमनीयत्वे सति देहमात्राश्रि-तत्वमितीयतैवेष्टसिद्धेरिति चेन्न, विशेषणानां विशेष्यद्वारैव क्रिया-न्वयित्वाद्विशेष्यस्योपादानस्यावश्यकत्वादिति।

नन्वत्र पूर्वमरिष्टप्रकरणमेव कथमुच्यते ज्वरस्य जन्मादौ निधने च विद्यमानत्वेन प्राधान्यादिति चेच्छृणु। प्रवृत्तौ कृतिसाध्यत्वप्रकारक-मिष्टसाधनताज्ञानमेव कारणं भवति। अयं भावः, इदं मत्कृतिसाध्यम्। इदं मदिष्टसाधनमित्युभयविधप्रकारज्ञाने प्रवृत्तिदर्शनात्। अत एव चन्द्रमन्थनादौ कृतिसाध्यत्वाभावादमृतानयनादौ प्रवृत्तिर्न भवति। कृतिसाध्यत्वाच्च इष्टसाधनत्वाभावाज्जलताडनादौ प्रवृत्तिर्न भवति। एवमेव ज्वरादिरोगिणश्चिकित्साकरणेऽपि किमस्य रोगिणो रोग-निवृत्तिर्मत्कृतिसाध्या न वेति पर्यालोचनायामरिष्टज्ञानमावश्यकम्। अरिष्टावलोकनानन्तरमेव निवृत्तिः तदभावाच्च प्रवृत्तिर्भविष्यति। चिकित्साकरणानन्तरमपि कालान्तरेण जायमानस्यारिष्टस्यावगमा-दियता कालेनास्य मृत्युर्भविष्यतीति कथनाच्चिकित्सायास्त्यागाच्च सुयशःप्राप्तिरेव। अतोऽरिष्टानि पूर्वमुच्यन्ते।

अधीत्येति। वाग्भट, भावप्रकाश, सुश्रुत और चरक को पढ़ कर एवं कतिपय स्थानों में अनुभव करके मरण-ज्ञान को अर्थात् अरिष्ट-ज्ञान को कहता हूँ। तात्पर्य यह है कि—'चरके चतुरो नास्ति वाग्भटे नापि वाग्भटः। सुश्रुतो न श्रुतो येन स वैद्यो यमकिङ्करः' इति।

चरकोक्त अरिष्टलक्षण—

चिकित्सामिति। चिकित्सा को अतिक्रमण कर गये हों, अर्थात् जिन चिह्नों का वातपित्तकफादिकों से सम्बन्ध न हो, परं तु तज्जन्यदोष जिस चिह्न को उत्पन्न कर देते हैं, वह चिह्न अरिष्ट कहाता है ॥२॥

फलादुत्पद्यते पूर्वं पुष्पं भवति तत्फलम्।
न च पुष्पमनादृत्य फलं क्वापि विलोक्यते ॥ ४ ॥

फल से प्रथम पुष्प होता है और फिर वही पुष्प फल हो जाता है, विना फूल के फल कभी नहीं होता है ॥ ४ ॥

न चारिष्टमनुत्पाद्य मृत्युर्भवति रोगिणाम् ।
सर्वदेत्थमरिष्टानि जनयित्वैव पञ्चता ॥ ५ ॥

इसी प्रकार विना अरिष्ट के उत्पन्न हुए रोगी की मृत्यु नहीं होती है । यह अरिष्ट मृत्यु का सूचक है, उत्पादक नहीं है । इस अरिष्ट के उत्पन्न होने के अनन्तर ही मृत्यु होती है । जो अरिष्ट जितने दिन पूर्व मृत्यु को सूचित करता है वह उतने दिन पूर्व उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥

न्यग्रोधप्लक्षवृक्षादौ फलं पुष्पं न चेक्षते ।
मृत्युस्तु सर्वभावेन जनयत्येव तत्पुरः ॥ ६ ॥

यद्यपि वरगद, पाकड़, पीपल आदि वृक्ष फल-पुष्पोत्पत्ति की आकांक्षा नहीं करते अर्थात् इन वृक्षों में फूल के विना ही फल उत्पन्न होते हैं, परंतु मृत्यु, सर्वप्रकार से अरिष्ट को प्रथम उत्पन्न करके ही होती है ॥ ६ ॥

न चेदृशमरिष्टं वा यन्न मृत्युं सुबोधयेत् ।
मृत्युं न जनयत्येतत् किन्तु बोधयते स्फुटम् ॥ ७ ॥

ऐसा कोई अरिष्ट नहीं है जो मृत्यु को सूचित न करे, यह अरिष्ट मृत्यु को उत्पन्न नहीं करता है, किन्तु मृत्यु को सूचित करता है ॥७॥

अरिष्टाभासतोऽरिष्टं ज्ञात्वा वक्त्यचिकित्सितम् ।
प्रज्ञाया अपराधोऽयं नत्वरिष्टस्य लक्षणः ॥ ८ ॥

अरिष्टाभास से अर्थात् अरिष्ट तो नहीं है परंतु कुछ लक्षणों से (चिह्नों से) भ्रमात्मक अरिष्ट मान कर अचिकित्स्य निश्चित मरण जान कर जो रोगी का परित्याग कर देता है, यह प्रज्ञा का अपराध है, जिसके कारण अरिष्ट न होने पर अरिष्ट मान गये, परंतु अरिष्ट के लक्षण का दोष नहीं है । क्योंकि पूर्णरूपेण अरिष्ट न होने पर भी अरिष्ट मान लिया ॥ ८ ॥

अरिष्टस्वरूप—

वर्णस्वरादिवैषम्य-ज्ञानाज् ज्ञेयमरिष्टकम् ।
चिकित्सकानां बोधार्थं तान्येवात्र निरूपये ॥ ९ ॥

वर्ण—देह के स्वरूप में वैषम्य होने पर, आधा शरीर अन्य प्रकार का हो जाय और आधा अन्य प्रकार का हो, जिसका विशेष रूप से वर्णन आगे करेंगे । स्वर—आदि पद से गन्ध स्पर्शादिक का ग्रहण करना । इनके वैषम्य-ज्ञान से अरिष्ट का लक्षण जानना । इन अरिष्ट के स्वरूपों को चिकित्सकों के परिज्ञानके लिये यहाँ पर निरूपण करता हूँ ॥

वर्णगन्धस्वरस्पर्शश्रोत्रघ्राणरसैरपि ।
तन्द्रासत्त्वस्मृतिबलैर्ग्लानिगौरवलाघवैः ॥ १० ॥

वर्ण—शरीर का शुक्लनीलादि स्वरूप, गन्ध-आकस्मिक दुर्गन्ध सुगन्ध का परिज्ञान, स्वर-दीन खर स्खलित आदि, स्पर्श-कहीं शीत कहीं उष्ण । एवम् खर-मृदु । छूने पर मृदु शरीर खर हो जाय, अथवा छूने पर अन्तर्हित हो जाय किंवा उच्छून हो जाय, श्रोत्र-प्रतिक्षण कानों में विभिन्न प्रकार की ध्वनि आवै, घ्राण-निष्कारण सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध भिन्न-भिन्न प्रकारसे आवे, रस-जिह्वा में मधुराम्ल लवणादिक रसों की प्रतीति न हो, अथवा भिन्न प्रकार की वस्तु में भिन्न प्रकार के रस की प्रतीति हो, तन्द्रा-निद्रा तो नहीं आवे परंतु आँखें अर्धविकसित रहें, सत्त्व-सामर्थ्य, स्मृति-स्मरणशक्ति, बल-भारादि-वहनसामर्थ्य अर्थात् पौरुष, ग्लानि-मन की अप्रसन्नता, सदा चित्त-वृत्ति गिरी सी बनी रहे । गौरव-शरीर भारी प्रतीत हो, लाघव-शरीर सर्वथा लघु हलका प्रतीत हो, ॥ १० ॥

आहारपरिणामैश्च विहारोपद्रवैरपि ।
अनुमानं चरेत्पूर्वं तत औषधमाचरेत् ॥ ११ ॥

आहार-परिणाम—भोजन किया हुआ पचे नहीं, विहार—चलने में अभिरुचि न हो, थकावट अधिक आवे, उपद्रव-विभिन्न प्रकार के

उपद्रव-हिक्का आध्मान आदि से प्रथम अनुमान करे, इन उपद्रवों की शान्ति के उपाय-साध्यासाध्य के हेतु आदिको विचारै, उसके बाद फिर रोगी को धैर्य देकर उत्साहित करते हुये औषध को करे। परंतु इतना ध्यान रक्खे कि कोई स्पष्ट अरिष्ट तो उत्पन्न नहीं हो गया है ॥११॥

तत्स्वप्नैर्दूतवाक्यैश्च मार्गापशकुनैरपि ।
भावावस्थान्तराभिश्च ज्ञात्वा कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ १२ ॥

एवम्—रोगी के स्वप्नों से, आये हुये रोगी के दूत वाक्यों से, जाते हुये मार्ग में उत्पन्न अपशकुनों से और रोगी की तथा कुटुम्बियों की सत्-असत् भावावस्थाओं को जान कर फिर चिकित्सा का आरम्भ करे ॥ १२ ॥

कानिचिद् रोगिपृक्तानि तेष्वपृक्तानि कानिचित् ।
तेषां परीक्षणोपायो विस्तरेण निगद्यते ॥१३॥

इन लक्षण—विचारों में कुछ ऐसे हैं, जिनका रोगी से सम्बन्ध है और कुछ ऐसे हैं जिनका रोगी से साक्षात् सम्बन्ध नहीं है, जैसे मार्ग में समुत्पन्न अपशकुन आदि। अब इनकी शुभाशुभ-परीक्षा का उपाय विस्तार से कहता हूँ ॥ १३ ॥

नायुःक्षयनिमित्तं तत् मृत्युलक्ष्मानुरूपि च ।
अन्तर्गतस्य बोधार्थं सर्वथोपदिशाम्यहम् ॥ १४ ॥

वह आयुक्षय का सूचक है, अब इसकी इतनी आयु रह गयी है इसका बताने वाला, मृत्यु के अचूक लक्षणों के अनुरूप जो कुछ हृद्-गत है उसके जानने के लिये सर्वथा मैं उपदेश देता हूँ, तात्पर्य यह है कि उसको जान कर विलम्ब से अथवा शीघ्र होने वाली मृत्यु को वैद्य बता देगा ॥ १४ ॥

श्यामताम्रहरिन्नील-शुक्लाः पूर्वमनाश्रिताः ।
रोगावस्थासु चोत्पन्नास्तूर्णं मृत्युं वदन्त्यमी ॥ १५ ॥

श्याम-काला, ताम्र—ताँबे का रँग, हरित्—हरा, नील-नीला, शुक्ल-श्वेत रंग, जो कि पूर्वावस्था में उत्पन्न न हों, किन्तु रोगावस्था में उत्पन्न हो जाँय तो वे रंग, रोगी की मृत्यु को शीघ्र होने वाली कहते हैं। यही रँगों का उत्पन्न होना अरिष्ट है, इसकी स्वस्वरूपावस्था में लाने की कोई चिकित्सा नहीं है ॥ १५ ॥

वामदक्षिणभागेन पृष्ठवक्षोविभागतः।
ऊर्ध्वाधरविभागेन वर्णः संजायते क्वचित् ॥ १६ ॥

कभी किसी रोगी के देह के वामभाग में और किसी के दक्षिण भाग में, एवं किसी के पृष्ठ भाग में, अर्थात् समस्त पृष्ठ में अथवा समस्त वक्षःस्थल में, एवम् ऊर्ध्व भाग में अथवा अधोभाग में मृत्यु-सूचक ये अरिष्ट-वर्ण उत्पन्न हो जाते हैं, इतना ध्यान रखना चाहिये कि सभी अरिष्ट सभी रोगी के उत्पन्न नहीं होते हैं, किंतु कभी किसी के कोई और कभी किसी के कोई ॥ १६ ॥

अर्धे मुखे समस्ते वा पूर्णापूर्णशरीरयोः।
अनिमित्तं समुत्पन्नो हन्ति संवत्सरावधेः ॥ १७ ॥

एवम् आधे मुख में समस्त मुख में अथवा संपूर्ण शरीर में यद्वा आधे शरीर में विना किसी कारण के उत्पन्न हुये पूर्वोक्त वर्ण, एक वर्ष के अन्तर्गत मृत्यु को सूचित करते हैं ॥ १७ ॥

शुक्लं कर्पूरसदृशं श्यामं वा भ्रमरोपमम्।
पाणिपादं मुखं यस्य स्यात्तमाशु त्यजेद् भिषक् ॥ १८ ॥

जिस रोगी के हाथ-पैर अथवा मुख कपूर के सदृश शुक्ल हो जाँय, अथवा भौंरों के सदृश नितान्त काले हो जाँय उस रोगी को मरणा-सन्न समझकर वैद्य शीघ्र छोड़ दे, उसकी चिकित्सा न करे। प्रायः श्यामता विसूचिका में और शुक्लिमा सन्निपातादिक शीघ्रघातक रोगों में आ जाती है ॥ १८ ॥

दन्तोष्ठमुखपादेषु पक्वजम्बूफलैः समम् ।
विसूचिकायामुत्पन्नं वर्णं दृष्ट्वा त्यजेद् बुधः ॥ १९ ॥

विसूचिका में रोगी के दाँत, ओष्ठ, मुख और पैरों में पके हुये जामुन के समान श्यामता आजाय तो उसे देख कर विद्वान् वैद्य उस रोगी को मरणासन्न समझ कर छोड़दे । यह श्यामता एक दो अङ्गों में अथवा सब में भी आ जाती है । १९ ॥

उच्छूनतां मसृणतां मुखे पादे विशेषतः ।
दृष्ट्वा साधु परीक्ष्यैव त्यजेद् वैद्यस्तमातुरम् ॥ २० ॥

संग्रहणी, अथवा जीर्ण ज्वर यक्ष्मादिक रोगों में मुख अथवा पैरों में उच्छूनता—सूजन और चिकनाहट को देखकर अच्छी तरह उसकी परीक्षा करे । उस परीक्षा का यह प्रकार है । उस सूजन को अंगुली से दावै, यदि कुछ चिरस्थायी गड्ढा पर जाय तो उसे अरिष्ट समझै और अरिष्ट देखकर उस रोगी को छोड़ दे, यह बचेगा नहीं इस प्रकार प्रत्याख्यान कर के भी रोगी के कुटुम्बियों के अनुरोध पर "प्रत्याख्याय चरेत् क्रियाम्" इस सिद्धान्त से चिकित्सा करे । । २० ।।

मुखे मसृणतां पुंसां सम्यगुच्छूनतामपि ।
योषितां पादयोः पश्येत् मासृण्योच्छूनते अपि ॥ २१ ॥

पुरुष के मुख पर मसृणता—चिकनाहट को एवम्—उच्छूनता-सूजन को अच्छी तरह देखे, और स्त्री के पैरों की सूजन और चिकनाहट को देखे और उसकी मकोय आदि के लेप से एवं मकोय खिलाकर चिकित्सा करै । इस प्रकार उपचारों से स्त्री और पुरुष की मुख-चरणगत उच्छूनतादि शान्त हो जाती है, यह अरिष्टाभास अरिष्टोत्पत्ति का पूर्वरूप है ।। २१ ।।

द्विवारमुपचारैस्तु शाम्यत्युच्छूनता द्वयोः ।
तृतीयावृत्तिमायाता ध्रुवं प्राणान् व्यपोहति ॥ २२ ॥

एवम् उपचारों से स्त्री और पुरुष की मुख–चरणगत उच्छूनता मसृणता दो बार शान्त हो जाती है, परंतु तृतीयावृत्ति यदि उच्छूनतादि उत्पन्न हो जाय तो निश्चित अरिष्ट है, एक मास में वह रोगी मर जाता है, वृद्धावस्था में प्रथमावृत्ति की मसृणता उच्छूनता से रोगी के छ मास जीवन की परमावधि समझे, कभी कभी पाँच चार महीनों में भी वह रोगी मर जाता है ॥ २२ ॥

यक्ष्मसंग्रहणीप्लीहा -पाण्डुमेहाद्यरोचके ।
दीर्घकालातिपातेनोच्छूनत्वं तत्र जायते ॥ २३ ॥

यह उच्छूनतादि यक्ष्मा, संग्रहणी, प्लीहा, पाण्डु, प्रमेह, अरोचकादि रोगों के दीर्घकाल तक ठहरने से स्वतः उत्पन्न हो जाती है ॥

प्रथमावृत्तिमायातं षड्भिर्मासैर्हिनस्ति तम् ।
तृतीयावृत्तिमायातं पक्षमात्रेण हन्ति तम् ॥ २४ ॥

यह प्रथमावृत्ति में उत्पन्न छ मास में एवं तृतीयावृत्ति में उत्पन्न पक्ष मात्र में रोगी को मार देती है, यह तत्समय मात्र जीवन का सूचक अरिष्ट है ॥ २४ ॥

वर्णभेदं मसृणतां दृष्ट्वोच्छूनत्वमेव च ।
शमनातिथितां यातं तं त्यजेदातुरं भिषक् ॥ २५ ॥

वर्णभेद–फटी सी आवाज अर्थात् स्वर में वैषम्य, मुखादि में उच्छूनता और मसृणता देख कर निश्चित मरणासन्न उस रोगी को जानकर उत्तम वैद्य उसे छोड़ दे ॥ २५ ॥

किञ्चिच्च् श्वासे समुत्पन्ने तद्दिनावधि जीवनम् ।
दीर्घे श्वासेऽथवा छिन्ने होरामात्रं स जीवति ॥ २६ ॥

पूर्वोक्त प्रकार के रोगी के कुछ श्वास उत्पन्न हो जाने पर वह रोगी उस दिन मात्र जीवित रहता है और यदि दीर्घ श्वास अथवा छिन्न श्वास उत्पन्न हो जाय तो वह दो ढाई घंटे मात्र जीवित रहता है ॥ २६ ॥

कश्चिद् वर्णो नखे नेत्रे मुखे मूत्रपुरीषयोः ।
क्षीणसत्त्वेन्द्रियेष्वेव जायते रोगहेतुतः ॥ २७ ॥

यदि नख, नेत्र, मुख और मूत्र -पुरीष में, विभिन्न वर्ण हो, क्षीण-सत्त्व-इन्द्रियसामर्थ्य जिसकी क्षीण हो गई हो ऐसे रोगी के नखादिकों में रोग के चिरस्थायी होने के कारण भिन्न प्रकार का वर्ण उत्पन्न हो जाता है ॥ २७ ॥

पाणिपादौष्ठनेत्रेषु ग्लानिं चापि विलोकयेत् ।
अरिष्टमिदमुत्पन्नं ज्ञात्वा मुञ्चेद् भिषग्वरः ॥ १८ ॥

और पाणि चरण ओष्ठ नेत्रों में स्पष्ट ग्लानि प्रतीत होने लगे तो उसे देखकर अरिष्ट उत्पन्न हो गया है यह जानकर उत्तम वैद्य उसे छोड़ दे ॥ २८ ॥

यस्य शुक्लाऽतिविपुला दन्तात्पतति वालुका ।
द्वित्रैस्तु दिवसैरेव मृत्युस्तमनुयास्यति ॥ २९ ॥

जिसके दाँतों से शुक्ल अत्यन्त-बहुत बालुका पड़े वह दो तीन दिन मात्र जीवित रहता है ॥ २९ ॥

अव्यक्तो गद्गदक्षामो जिह्वाघूर्णनतोऽस्फुटः ।
स्वरो यस्य समुत्पन्नस्तद्दिनं न स जीवति ॥ ३० ॥

जिसका अव्यक्त-स्पष्ट नहीं, अथवा गद्गद, अथवा क्षाम-क्षीना नितान्त पतला, यद्वा जिह्वा के न घूमने से अप्रतीयमान शब्द हो जाय वह चौबीस घंटा में मर जायगा ॥ ३० ॥

सन्निपातज्वरे शब्द-मजावीसदृशं वदेत् ।
दिनमात्रप्रमाणेन जीवनं तस्य निर्दिशेत् ॥ ३१ ॥

संन्निपात ज्वर में जिसका शब्द बकरी भेड़ के सदृश हो जाय अर्थात् भेड़ बकरी के सदृश बोले, वह उस दिन से अधिक जीवित नहीं रहता है ॥ ३१ ॥

अनिमित्तं वहेद् गन्धो यस्य देहात् शुभाशुभः ।
वर्षस्यैवान्तरे मृत्युर्वाढं तमनुयास्यति ॥ ३२ ॥

जिसके देह से निष्कारण शुभ अथवा अशुभ, सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध आवे उसकी एक वर्ष में मृत्यु जरूर किसी रोग से अथवा हृद्गति के बन्द हो जाने से हो जायगी ॥ ३२ ॥

देहाद् दिवानिशं यस्य नानापुष्पसमो वहेत् ।
गन्धस्त पुष्पितं विद्यात् तत्समाभ्यन्तरे मृतम् ॥ ३३

जिसके देह से अनेक फूलों के सदृश सुगन्ध दिनरात आवे उसे पुष्पित संज्ञक रोगी समझे और उसे एक वर्ष के अन्दर मरा हुआ समझे ॥ ३३ ॥

अस्नाते वाऽपि सुस्नाते निष्कारणमुपागतः ।
सुगन्धो यस्य देहे स्यादब्दमात्रं स जीवति ॥ ३४ ॥

विना स्नान किये हुये अथवा स्नान किये हुये जिसके देह से निष्कारण सुगन्ध आवे वह एक वर्ष मात्र जीवित रहता है ॥ ३४ ॥

चन्दनागुरुभूपद्म–सारकुंकुमसन्निभः ।
सुगन्धो यस्य देहे स्यात् न स जीवति वत्सरम् ॥ ३५ ॥

जिसके देह से चन्दन, अगरु-धूप, गुलाव के इत्र अथवा केसर के सदृश सुगन्ध आवे वह एक वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहता है ॥

वहुपुष्पसमो गन्धो यस्य वा कुसुमोपमः ।
देहादजस्रमायाति वत्सरस्तस्य जीवनम् ॥ ३६ ॥

जिसके देह से अनेक फूलों के सदृश अथवा एक पुष्प के सदृश सदा गन्ध आवे उसकी एक वर्ष मात्र जीवन की अवधि है ॥ ३६ ॥

विण्मूत्रकुणपैस्तुल्यो मांसशोणितसन्निभः ।
यद्देहाद् गन्ध आयाति न स जीवेत्समावधिम् ॥ ३७ ॥

जिसके देह से विष्ठा, मूत्र, शव (मुर्दा) के समान अथवा मांस, शोणित (रुधिर) के सदृश गन्ध आवे वह एक वर्ष तक जीवित नहीं रहता है ॥ ३७ ॥

दुर्गन्धं वा सुगन्धं वा यस्य पश्येद् भिषक् तनौ ।
पुष्पितं तं परिज्ञाय वर्षे मरणमादिशेत् ॥ ३८ ॥

वैद्य जिसके देह में स्थिर-सदा स्थायिनी हमेशा रहने वाली सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध को देखे उसे पुष्पित समझ कर वर्ष मात्र में मरने को कह दे । एक वर्ष से अधिक नहीं जियेगा ॥ ३८ ॥

वर्णगन्धपरिज्ञान-मिदमार्षमुदीरितम् ।
अतः परं रसादेश्च ज्ञानात्तत्समुदीर्यते ॥ ३९ ॥

इस प्रकार शौक्ल्यादि वर्णों का और गन्ध का परिज्ञान अर्थात् वर्ण-गन्धजन्य अग्निवेश ऋषिप्रणीत अरिष्टज्ञान को कहा; अब इसके अनन्तर रसादिक के ज्ञान से उस अरिष्ट को कहता हूँ ॥ ३९ ॥

वैरस्यं स्वतनौ कश्चित् कश्चिन्माधुर्यमश्नुते ।
आतुरस्तदहं वच्मि येन वैद्यो न मुह्यति ॥ ४० ॥

कोई रोगी अपने शरीर में वैरस्य को और कोई माधुर्य को धारण करता है। तात्पर्य यह है कि वैरस्य के कारण मक्षिका आदि उसके पास नहीं आती हैं और माधुर्य के कारण अत्यधिक आती हैं, जिसका अरिष्टत्वेन आगे वर्णन करेंगे । उस वैरस्यादि को मैं कहता हूँ, जिससे वैद्य मोहित नहीं होता है, अर्थात् जीवनादिक के भ्रम में नहीं पड़ता ॥ ४० ॥

प्रथम वैरस्य-परिज्ञान को कहता हूँ ।

यस्य देहात्पलायन्ते यूकादंशकमक्षिकाः ।
मत्कुणा मशकाश्चापि विरसं तं त्यजेद् भिषक् ॥ ४१ ॥

जिस रोगी के देह से यूक-शिर में पड़नेवाले जूं अथवा वस्त्रों में

पड़ने वाले चीलर (चिलुआ) तथा दंशक—डांस, एवं मक्खी, खटमल-खटकिरवा, मच्छड इत्यादिक दूर भागते हैं उस विरस रोगी को वैद्य छोड़ दे, अर्थात् उसे निश्चित मरणानुगत समझ कर चिकित्सा छोड़ दे, प्रायः वह छ महीना ही जियेगा ॥ ४१ ॥

अत्यर्थमधुरे काये यमदृष्टस्य देहिनः ।
क्रूरा संदंशवक्त्राग्राः कीटाः सर्पन्ति सर्वतः ॥ ४२ ॥

अत्यन्त मधुर जिसका शरीर हो गया हो उस रोगी को यमराज से दृष्ट समझे । क्योंकि क्रूर भयंकर सँड़सी के समान जिनके मुखाग्र अर्थात बड़े मुख वाले कीड़े—चींटे उस मधुर शरीर पर चारों तरफ से दौड़ने लगते हैं ॥ ४२ ॥

सुस्नातेऽप्यातुरे दंशा निपतन्ति च मक्षिकाः ।
तं वैद्यो बोधयेदन्यान् त्रिमासावधिजीवनम् ॥ ४३ ॥

पूर्ण रूप से अच्छी तरह स्नान किये हुये भी जिस रोगी पर मच्छड और मक्खियाँ अत्यधिक आकर पड़ें उसे वैद्य, यह तीन महीना मात्र जियेगा इस प्रकार अन्य लोगों को बता दे ॥ ४३ ॥

सबलः शक्तिसहितो नीरोगश्चाप्यदुर्बलः ।
मक्षिकादिपरिक्रान्तः षण्मासान्नाधिकं वसेत् ॥ ४४ ॥

बल–पौरुष–युक्त अर्थात् बली और सामर्थ्यवान् तथा नीरोग एवम् अदुर्बल-हृष्टपुष्ट मनुष्य यदि मक्षिकाओं से परिक्रान्त हो तात्पर्य यह कि उसके ऊपर सर्वदिशाओं से अनिर्वचनीय संख्या में मक्षिकाएँ पड़ें तो वह छ महीना से अधिक नहीं जियेगा, स्वतः कोई न कोई बीमारी उत्पन्न होकर उसे मार देगी ॥ ४४ ॥

दुर्बलं व्याधितं दृष्ट्वा मक्षिकाकीटसंकुलम् ।
मासमात्रेण शमनातिथिमायातमादिशेत् ॥ ४५ ॥

यदि दुर्बल और व्याधियुक्त बीमार पुरुष कीट—बड़े बड़े चींटा और

मक्षिका आदि से व्याप्त हो तो वह केवल एक मास जियेगा। उसे एक महीना के समनन्तर यमराज का अतिथि समझे ॥ ४५ ॥

अव स्पर्श से मृत्युज्ञान अरिष्ट को कहता हूँ।

अथ स्पर्शे परिज्ञेयं मृत्युज्ञानमिहोच्यते।
यज्ज्ञानान्नैव मुह्येत भिषक् स्तुत्यभिलाषुकः ॥ ४६ ॥

अव स्पर्शमात्र से जानने योग्य मृत्युज्ञान को इस अरिष्ट प्रकरण में कहता हूँ, जिसके जानने से स्तुति का अभिलाषी–यश का चाहने वाला वैद्य मोह को प्राप्त नहीं होता है, अर्थात निश्चित मरण-समय बता देता है ॥ ४६ ॥

व्याधितस्य स्पृशेद् गात्रं सुस्थेन स्वेन पाणिना।
मर्दयेद् वा परेणैवं तदङ्गं स्वल्पमात्रतः ॥ ४७ ॥

सुस्थ अपने हाथ से बीमार मनुष्य के शरीर का स्पर्श करै। अथवा अन्य के द्वारा स्वल्पमात्र उस उग्र बीमार का अथवा चिर बीमार के शरीर का मर्दन करावे, अर्थात् उसके शरीर को कुछ मलवाये ॥ ४७ ॥

तत्र भावा भवन्तीमे सम्यक् तानवलोकयेत्।
सततं स्पन्दमानाङ्गं स्तम्भोभवति सत्वरम् ॥ ४८ ॥

उस मर्दित स्थान पर ये भाव होते हैं, उन्हें सम्यक् प्रकार सावधानी से देखे, उस रुग्ण मनुष्य का सतत स्पन्दमान अङ्ग एक दम स्तब्ध हो जाता है ॥ ४८ ॥

दारुणत्वं च मृदुनः शैत्यं चापि तथोष्मणः।
श्लक्ष्णस्य च खरत्वं स्यात् असद्भावः सतामपि ॥ ४९ ॥

और मृदु कोमल वह अङ्ग कठोर हो जाता है तथा उष्ण-गरम वह अङ्ग शीत हो जाता है, चिकने उस अङ्ग का खरखरापन अर्थात् रूखापन हो जायगा, स्पष्ट प्रतीयमान वह स्थान अप्रतीयमान हो जायगा, अर्थात् वहां का मांस इधर उधर हो जायगा ॥ ४९ ॥

वीतीभावस्तु रुधिरामिषयोरपि जायते ।
स्रंशो भ्रंशश्च्युतिरथो सन्धीनामुपपद्यते ॥ ५० ॥

रुधिर और मांस वहां का कुछ समय के लिये शून्यरहित हो जायगा । एवं उस स्थान का स्रंस-सरक जाना, ध्वंस-इतस्ततः छिन्न भिन्न हो जाना अथवा वहाँ के सन्धि स्थानों की च्युति-इतस्ततः बहना, अर्थात् उसके अङ्ग वहते हुये से प्रतीत होने लगेंगे । तात्पर्य यह, कि वह स्थान यथावस्थित स्वरूप न रहेगा ॥ ५० ॥

स्तम्भः स्वेदानुबन्धस्य दारुणत्वं च वा भवेत् ।
यच्चान्यद् विकृतं किंचित् तत्सर्वं वैपरीत्यधृक् ॥ ५१ ॥

तथा अत्यधिक पसीना आता हो परंतु उस स्थान के स्पर्श से (एकदम) सहसा पसीना रुक जाय, अथवा वह स्थान कठोर हो जाय, भावार्थ यह है—कि जो कुछ उस स्थान पर विपरीत अथवा यथावस्थित होगा उससे विपरीत हो जायगा ॥ ५१ ॥

पादं जंघोरुपार्श्वांघ्रि-पाणिपृष्ठेषिकास्वपि ।
ललाटे चाधिकं स्तब्धं शीतं स्विन्नं प्रजायताम् ॥ ५२ ॥

पैर, जङ्घा, ऊरु-फीली-पैर से लेकर जङ्घा की गाँठ पर्यन्त, पार्श्व-पसली, अङ्घ्रि-चरण, पाणि-हाथ, पृष्ठ-पीठ-ईषिका-रीढ़ पीठ की लम्वी हड्डी में तथा जिसके मस्तक में अत्यधिक सघन ठण्डा पसीना उत्पन्न हो, उसे असाध्य समझकर यह मरण का सूचक अरिष्ट उत्पन्न हो गया है यह जानकर छोड़ दे ॥ ५२ ॥

अरुद्धं रोधितं स्विन्नं पश्येद् दुर्बलमातुरम् ।
रक्तामिषेण शून्यं च स्वल्पजीवं त्यजेद् भिषक् ॥ ५३ ॥

वैद्य जिस रोगी के आता हुआ रोका गया पसीना नहीं रुकता है ऐसा देखे और दुर्वल रक्त मांस से रहित उस रोगी को स्वल्प समय तक यह जीवित रहैगा ऐसा समझकर उसे छोड़ दे। यह मरण

सूचक अरिष्ट है, ऐस आचार्यों का मत है ॥ ५३ ॥

गुल्फजानुहनुघ्राण-स्तनकर्णाक्षिवंक्षणम् ।

स्रस्तं व्यस्तं च्युतं दृष्ट्वा भिषग् मुञ्चेद् गतायुषम् ॥ ५४ ॥

जिस रोगी के गुल्फ-पैर की ग्रन्थि, जानु-पिंडुरी, हनु-ठोढी, अर्थात् चिवुक, घ्राण-नासिका, स्तन, कान, अक्षि (आँखें) और वक्षस्थल यदि अधोभाग की तरफ झुक जाय, अथवा फैल जाय पूर्वावस्था से बहुत बड़े हो जाय, अथवा च्युत हो जाय, सर्वथा गिर जाय—एक प्रकार से अप्रतीयमान से हो जाय तो उसे गतायु (मृतप्राय) देखकर अर्थात् उसे मरा हुआ जानकर वैद्य जवाब दे दे, किसी प्रकार का उपचार न करे ।

मन्यागतिविहीनं वा श्वासप्रश्वासवर्जितम् ।

गतायुषं परिज्ञाय न चिकित्सेत् कथंचन ॥ ५५ ॥

जिस रोगी की नाड़ी की गति वन्द हो, श्वास-प्रश्वास रहित हो, वह मरा हुआ है ऐसा समझकर किसी प्रकार भी कुछ भी चिकित्सा न करे ॥ ५५ ॥

यस्य दन्ता घनीभूताः क्षरन्ति श्वेतशर्कराम् ।

पक्ष्माणि वा जटावन्ति ज्ञात्वा मुञ्चेत्तमातुरम् ॥ ५६ ॥

जिस रोगी के दाँत घनीभूत हों आपस में जकड़ जायँ, तथा दाँतों से सफेद बालू सी गिरती हो, अथवा आँख की पलकें जटा-वाली हो जायँ तो उस रोगी को मरणासन्न जानकर उसका परित्याग कर दे ॥ ५६ ॥

चक्षुषी प्रकृतेर्हीने विकृतिं वा गते उभे ।

अतिप्रविष्टे वा जिह्वे स्तब्धे वा विषमस्थिते ॥५७॥

जिसकी आँखें प्रकृति से रहित हो जायँ अथवा विकृति —विकार को प्राप्त हों—यथास्थान न हों, अथवा टेढी-तरेरी हो जायँ,

अथवा स्तब्ध-पथरीली एकाकार—ठहर जायँ अथवा विषम स्थान पर हो जायँ अर्थात् ऊपर चढ़ जायँ ॥ ५७ ॥

विमुक्तबन्धने वापि निमेषोन्मेषसंकुले ।
सततोन्मिषिते वापि संततं वा निमेषिते ॥ ५८ ॥

अथवा विमुक्त बन्धन होकर बड़ी बड़ी बाहर देख पड़ने लगें, अथवा निमेष-उन्मेष से अत्यन्त व्याप्त हों, अर्थात् बराबर खुलती और तुरत बंद हो जाती हों अथवा सदा खुली रहें, यद्वा सदा बंद रहें ॥

प्रस्तुते चातिविभ्रान्ते व्यस्ते ज्ञानविवर्जिते ।
विपरीते कपोतान्धे कृष्णे नीले हरिण्मये ॥ ५९ ॥
अलातवर्णे ताम्रे वा श्यावे पीते च पाण्डुरे ।
अन्यथा वाऽतिविकृते नेत्रे दृष्ट्वा त्यजेद् भिषक् ॥ ६० ॥

अथवा सदा अश्रु आये अर्थात् सदा आँखों से पानी बहता हो, अथवा अत्यन्त घबड़ाई सी हो, अथवा ज्ञान-शून्य फैली सी बड़ी-बड़ी हों। कभी २ आँखों के व्यस्त न होने पर ज्ञान विवर्जित हो जाने पर भी अरिष्टाभास समझे, अतः ज्ञान-विवर्जन में आँखों का व्यास होना आवश्यक है, अथवा आँखें विपरीत हो जायँ अर्थात् आँखें पलट जायँ, अथवा कपोत की तरह अन्ध हो जायँ, अथवा काली, नीली, हरित, जलती हुई लकड़ी के समान हों, अथवा ताम्रवर्ण हों, अथवा कपिशवर्ण कुछ धुमैली अर्थात् गहरी पृथ्वी के रंग की हों, अथवा नितान्त पीली अथवा पाण्डुर विलक्षण श्वेततायुक्त, अथवा अत्यन्त विकृत आँखों को देख कर वैद्य रोगी को आसन्न-मृत्यु समझ कर उसका परित्याग कर दे ॥ ६० ॥

होरा वापि मुहूर्तौ वा दिनपादोऽथ वा गतौ ।
स्थितेरुपद्रवाणां वा ज्ञानात् ब्रूयाद् भिषग्वरः ॥ ६१ ॥

एक घंटा, ढाई घंटा अथवा तीन घंटा तक यह ठहरेगा, ऐसा

कह दे, अथवा उपद्रवों को देख कर परित्याग कर दे, जैसे हिक्का श्वासादि। परंतु साधारण उपद्रव—अधिक बोलना कपड़ा न ओढना उलझना आदि उपद्रवों को देख कर परित्याग न करे, किन्तु उनकी शान्ति के लिये चिकित्सा करे ॥ ६१ ॥

अथवा केशलोमानि व्याधितस्य प्रलोचयेत्।
न प्रलोचे भवेज्ज्ञानं मृतं विद्यात्तमातुरम् ॥ ६२ ॥

अथवा मस्तक के दो चार बालों का लुञ्चन करे अथवा अन्य के द्वारा लुञ्चन करावे, परंतु उस रुग्ण को केश-लुञ्चन का ज्ञान न हो तो उसे मृत के समान समझे, तीन दिन से अधिक नहीं जीवेगा ॥

श्यावताम्रहरिद्राभाः शुक्ला जठरगाः शिराः।
भवेयुर्यस्य रुग्णस्य सप्ताहं तस्य जीवनम् ॥ ६३ ॥

जिस रोगी के पेट की नसें काली पीली ताम्रवर्ण अथवा सफेद हो जायँ, वह केवल सात दिन जीवेगा ॥ ६३ ॥

एवं परिज्ञाय भिषग्वरोऽसौ न मोहमागच्छति साध्यकार्ये।
प्रज्ञापराधः खलु वैपरीत्य-ज्ञाने न दोषोऽयमरिष्टतायाः ॥६४॥

इति श्री सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-विद्यावारिधि-महामहोपाध्याय
पंडित मथुराप्रसादकृते रोगिमृत्युविज्ञाने
आयुर्विज्ञाने प्रथमोऽध्यायः।

इस प्रकार अरिष्ट-ज्ञान को प्राप्त उत्तम वैद्य रोगी के साध्यासाध्य ज्ञान में मोह को—विपरीत ज्ञान को-प्राप्त नहीं होता है, यदि विपरीत ज्ञान हो जाय तो बुद्धि का (समझ कर) दोष कहे, अरिष्ट के लक्षण का नहीं ॥ ६४ ॥

इति श्रीसर्वतन्त्रस्वतन्त्र विद्यावारिधि महामहोपाध्याय
पंडित मथुराप्रसादकृत रोगिमृत्युविज्ञानका
प्रथम अध्याय।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

य आतुरोऽम्बरं सान्द्रं भूमिं शून्यां विलोकयेत् ।
उभयं वाऽन्यथा पश्येत् होरामात्रं स जीवति ॥ १ ॥

जो आतुर (अत्यधिक बीमार रोगी) आकाश को घना किसी पदार्थ से व्याप्त देखे, अथवा पृथ्वी को शून्य आकाश की तरह खाली देखे, वह ढाई घंटे तक जीयेगा ॥ १ ॥

दीप्तदीपं प्रभाशून्यं पश्येद्वा व्योम्नि मारुतम् ।
स्थितं ब्रूयाद् गतः कस्मात् मुहूर्तात् स व्रजिष्यति ॥ २॥

जो रोगी जलते हुए दीप को प्रभाशून्य बुझा हुआ देखे, अथवा आकाश में वायु-आँधी की तरह अत्यन्त वायु को देखे, यद्वा सन्मुख स्थित मनुष्य को कहे कि क्यों चला गया, वह रोगी मुहूर्तमात्र जीवेगा ॥ २ ॥

शुद्धे जले वदेज्जालं सजालं विमलं वदेत् ।
प्रत्यक्षं प्रेतरक्षांसि पश्यन् याति यमालयम् ॥ ३ ॥

जो रोगी शुद्ध जल में जाला है, गँदला यह जल है ऐसा कहे, और गँदले जल को स्वच्छ कहे' जो रोगी प्रत्यक्ष सामने प्रेत, राक्षस आदि को देखे, वह वहुत जल्द मृत्यु को प्राप्त होता है; उसे निश्चित मरा हुआ समझे ॥ ३ ॥

प्रकृतिस्थं वदेद् वह्निं कृष्णं शुक्लं च निष्प्रभम् ।
तथाऽन्यं चान्यथा पश्येत् तं विद्यात् शमनातिथिम् ॥४॥

प्रकृतिस्थ स्पष्ट जलती हुई अग्नि को कृष्ण बुझी हुई श्याम वर्ण की अथवा निष्प्रभ सफेद कहे, अथवा अन्य मनुष्य को अन्य कहे

अर्थात् न पहिचान कर दूसरे को दूसरा कहे, उसको यमराज का अतिथि (मरणासन्न) समझे ।। ४ ।।

चपलां विमले व्योम्नि मेघं वापि विलोकयेत् ।
सूर्याचन्द्रौ प्रभाशून्यौ ब्रुवन् मरणमृच्छति ।। ५ ।।

जो रोगी स्वच्छ आकाश में चमकती हुई बिजली को देखे, अथवा स्वच्छ आकाश में मेघाडम्बर-घोर वादलों को देखे, अथवा सूर्य और चन्द्रमा को प्रभाशून्य देखे और कहे, उसे समझो कि वह थोड़े समय का अतिथि, मरणासन्न है ।। ५ ।।

मृण्मयीमिव पात्रीं यः कृष्णवस्त्रसमावृताम् ।
प्रत्यक्षमिव पश्येत्तां न स जीवति चाधिकम् ।। ६ ।।

काले वस्त्रसे ढकी हुई मिट्टीकी बनी हुई पात्री (थाली गगरी आदि) को प्रत्यक्ष की तरह देखे, वह रोगी अधिक समय तक नहीं जीवित रहता, तात्पर्य यह कि वह कहे कि यह मट्टी की थाली आदि काले वस्त्र से क्यों ढांक कर रक्खी है, नहीं है, तुम्हें भ्रम है—ऐसा कहने पर कहे कि यह क्या है, सामने तो साफ स्पष्ट ढकी है——ऐसा कहे; वह रोगी अधिक समय तक नहीं जीता है ।। ६ ।।

अपर्वणि गतं दृष्ट्वा सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहम् ।
व्याधितोऽव्याधितो वापि मासमात्रं स जीवति ।। ७ ।।

अपर्व में अर्थात् अमावास्या अथवा पूर्णिमा तिथि के बिना सूर्य अथवा चन्द्रमा के ग्रहण को देखे, तात्पर्य यह कि सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण का समय योग के न होने पर भी उसके अभाव में सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण को देखे, वह रुग्ण-बीमार-हो अथवा व्याधि रहित स्वस्थ तन्दुरुस्त हो; परंतु अपर्व में देखने के कारण केवल एक मास जीवित रहता है ।। ७ ।।

रात्रौ भानुं दिवा चन्द्रमनग्नौ धूममुत्थितम् ।
प्रभाविरहितं रात्रौ वह्निं दृष्ट्वा म्रियेत सः ॥ ८ ॥

जो रोगी रात्रि में सूर्य को देखे और दिन में चन्द्रमा के न रहने पर भी रात्रि के समान चमकते हुये चन्द्रमा को देखे, आग के बिना खाली स्वच्छ पृथ्वी से उठते हुये धुआं को देखे, और रात्रि में जलती हुई अग्नि को प्रभारहित बुझी हुई कोयला के रूप में देखे; वह जल्दी ही दो चार घंटों में मर जायगा ॥ ८ ॥

विवर्णानि विरूपाणि निर्निमित्तान्यनेकशः ।
गतायुषो निरीक्षन्ते नरा रूपाणि संमुखम् ॥ ९ ॥

विना कारण के अनेक प्रकार के विभिन्न वर्ण के काले पीले लाल वर्ण के विरूप कटे बड़े भारी डरावने रूपों को प्रत्यक्ष वे मनुष्य देखते हैं, जिनकी आयु समाप्त हो गयी है। अर्थात् जिसको सामने भयावह अनेक रूप वाले पुरुष देख पड़ें, वह जल्द ही उसी दिन मर जायगा ॥ ९ ॥

अदृश्यान् देवयक्षादीन् पश्येदम्बरसंस्थितान् ।
स्थितान् स्वकान्न पश्येच्च होरामात्रं स जीवति ॥ १० ॥

जो रोगी अदृश्य स्वरूपवाले देवता-यक्ष-राक्षस-गन्धर्वादिकों को सामने आकाश में ठहरे हुये देखे और सामने स्थित विद्यमान अपने सगे भाई पुत्र कलत्र आदि इष्ट मित्रों को न देखे; वह होरामात्र (दो ढाई घंटे मात्र) जीता रहता है ॥ १० ॥

शब्दं शृणोति यो व्योम्नि पार्श्वस्थं न शृणोति यः ।
तावुभौ यमलोकस्थौ विज्ञेयौ सुचिकित्सकैः ॥ ११ ॥

जो आकाश में विद्यमान शब्द को सुनता है, अथवा जो पास में ही शब्द को नहीं सुनता, उन दोनों को उत्तम चिकित्सक—सद्वैद्य

यमलोकस्थ समझे। उनको आसन्न-मृत्यु समझ कर त्याग दे, अर्थात् उनकी चिकित्सा न करे॥ ११ ॥

कर्णौ स्वाङ्गुलिसंवृत्तौ कृत्वा ध्यानं न यच्छति।
मुमूर्षुमिव मत्वैनं मुञ्चेत् तूर्णं चिकित्सकः॥ १२ ॥

जो रोगी अपनी अँगुलियों से कानों को बन्द कर के किसी की वात को अथवा किसी प्रकार के शब्द को नहीं सुनना चाहता है, उसे मरणासन्न समझ कर वैद्य जल्दी ही छोड़ दे। प्रायः ये लक्षण सन्निपात ज्वर में होते हैं, ऐसा ही देखा गया है। प्लीहा, जीर्णज्वर, संग्रहणी, अतिसार आदि में ये पूर्वोक्त लक्षण नहीं होते हैं; क्योंकि संग्रहणी-अतिसार में तो मरणासन्न तक पूर्णरूपेण ज्ञान बना रहता है, इसीलिये कहा है कि "अतीसारेण मरणं योगिनामपि दुर्लभम्" अतीसार बीमारी से मरना योगियों को भी दुर्लभ है, क्योंकि उसमें ज्ञान नष्ट नहीं होता॥ १२ ॥

सुगन्धं वाऽपि दुर्गन्धं यः पश्यति विपर्ययात्।
नासारोगादृते रुग्णं तं विद्याद्विगतायुषम्॥ १३ ॥

जो बीमार नाक की बीमारी के विना सर्वतोभाव से प्रत्येक पदार्थ में सुगन्ध को देखे, अर्थात् प्रत्येक पदार्थ को सुगन्धित समझे, अथवा प्रत्येक को दुर्गन्धयुक्त प्रत्येक वस्तु को दुर्गन्धित समझे, अथवा सुगन्धित को दुर्गन्धित और दुर्गन्धित को सुगन्धित समझे, कहे, माने उसे वैद्य गतायु समझे। स्वस्थावस्था में छह महीना वह जीता है, रुग्णावस्था में केवल तीन मास या एक मास जीता है॥ १३ ॥

मुखपाकाद् ऋते सम्यग् यो रसान्नैव बुध्यते।
अन्यथा वा विजानाति न स जीवति वत्सरम्॥ १४ ॥

जो मनुष्य मुखपाक के विना मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय,

तिक्त रसों को न समझे, अर्थात् जिसको खट्टा, मीठा, कड़ुआ नहीं लगे, रसग्रहण-रहित जिह्वा जिसकी हो जाय, अथवा अन्यथाप्रकार से समझे अर्थात् खट्टे को मीठा समझे, अथवा मीठे को खट्टा या अन्य प्रकार को अन्य प्रकार का समझे, वह केवल एक वर्ष मात्र जीवित रहता है। तात्पर्य यह है, कि उसकी प्राणवायु जिह्वा को छोड़ चुकी है, मन पूर्णरूपेण रसनेन्द्रिय को ग्रहण नहीं करता है ॥ १४ ॥

खरान् श्लक्ष्णान् तप्तान् शीतान् मृदूनपि च दारुणान् ।
स्पर्शान् स्पृष्ट्वाऽन्यथा ब्रूयात् न तदब्दं स जीवति ॥ १५ ॥

जो मनुष्य रूखे को चिकना कहे, अथवा चिकने को रूखा कहे, एवं गरम को ठंढा, ठंढे को गरम अथवा मृदु को कठोर एवं कठोर वस्तु को मृदु कहे, स्पर्श कर के भी अन्यथा कहे, वह एक वर्ष से अधिक नहीं जीवेगा, उसी वर्ष में उसकी मृत्यु हो जायगी। यहाँ भी उक्त प्रकार से समझे। स्पर्शनेन्द्रिय में प्राण वायु का संचार न होने से पूर्णरूपेण मन का स्पर्शनेन्द्रिय से योग नहीं होता है। त्वगिन्द्रिय की त्वग्गत तन्मात्रारूप इन्द्रिय नष्ट हो गई है। पाँचों की पाँच तन्मात्राएँ होती हैं, इत्यादि भारत इतिहास में मैंने वर्णन किया है ॥१५॥

अतप्त्वा च तपस्तीव्रं योगं वाऽप्यनवाप्य यः ।
अतीन्द्रियं वदेत् पश्यन् न चाब्दात्सोऽधिकं वसेत् ॥ १६ ॥

जो मनुष्य तीव्र तपस्या के विना अर्थात् तपोवल की सिद्धि के विना, अथवा विना योग प्राप्त हुये (योग प्राप्ति के समनन्तर दो प्रकार के योगाभ्यास वाले योगी होते हैं। एक युक्त-योगी और दूसरे युञ्जान-योगी। युक्तयोगी को सदा समस्त चराचर संसार करामलकवत् हाथ में लिये हुये आमले की तरह भासमान रहता है और युञ्जान योगी को जिस वस्तु के जानने की इच्छा करता है वह वस्तु अतीन्द्रिय होते हुये भी प्रत्यक्षवत् देख पड़ती है।) विना तप, विना योग-सिद्धि के जो मनुष्य अतीन्द्रिय पदार्थों को देखते हुये कहता है, प्रश्न करने पर

अतीन्द्रिय पदार्थों को बता देता है, वह एक वर्ष से अधिक नहीं जीवित रहता है, अर्थात् उसी वर्ष में वह मर जायगा ॥ १६ ॥

स्वस्थाः प्रज्ञाविपर्यासैरिन्द्रियार्थेषु वैकृतम् ।
पश्यन्ति बहुशो ये वा न ते यान्त्यब्दतः परम् ॥ १७ ॥

जो (स्वस्थ) किसी प्रकार के भी रोग से रहित मनुष्य बुद्धि के विपर्यास से अर्थात् बुद्धि के उलट फेर के कारण पदार्थों में प्रायः विकार को देखते हैं, वे एक वर्ष से अधिक नहीं जियेंगे ॥ १७ ॥

स्वस्थानामायुषो ज्ञानं विमृश्येदं मयेरितम् ।
बहुधा च परीक्ष्यैव तद् गृहेऽन्यं वदेद् भिषक् ॥ १८ ॥

यह स्वस्थ नीरोग मनुष्यों के आयुर्दाय (उमर का ज्ञान) मैंने चरकादि ग्रन्थों के आश्रित मुनिप्रणीत वचनों को विचार कर कहा है, प्रायः अनेक प्रकार से परीक्षा कर के अरिष्ट के लक्षण देख कर उस अरिष्ट-लक्षण-प्राप्त मनुष्य के घर में दूसरों से वैद्य कह दे कि अमुक मनुष्य एक वर्ष के अन्दर मर जायगा। अर्थात् यह एक वर्ष से अधिक नहीं जियेगा। इस प्रकार कहने से यश उसको होता है, जनता उत्तम वैद्य मानती है, परंतु सर्वतोभाव से न कहे, किन्तु आत्मीय प्रशंसक विज्ञ सत् लोगों से ही कहे ॥ १८ ॥

स्नानानुलिप्तदेहेऽपि यस्मिन् गृध्नन्ति मक्षिकाः ।
स प्रमेहमनुप्राप्य नाशाय प्रभविष्यति ॥ १९ ॥

स्वस्थ स्नानादि किये हुये स्वच्छ जिस मनुष्य के ऊपर मक्खियाँ अत्यधिक पड़ती हैं, देह पर चिपकती हैं, वह मनुष्य एक वर्ष के अन्दर प्रमेह रोग को प्राप्त होकर मृत्यु को प्राप्त होगा ॥ १९ ॥

आयासश्चिन्तनोद्वेगौ मोहश्चास्थानके रतिः ।
अरतिर्बलहानिश्चोन्मादे याता निहन्त्यमुम् ॥ २० ॥

आयास—श्रान्त-थका हुआ अपने को माने, सदा चिन्ता करता हुआ, चिन्ताजनक बातों को विचारता हुआ, प्रतिक्षण उद्विग्न घवड़ाया हुआ, अयुक्त वस्तुओं में अत्यधिक प्रेम रखे, अर्थात् पत्थर अथवा गिटकैली के छोटे २ टुकड़ों में प्रेम रखे, उन्हें लाकर अपने पास रखे, किसी एक स्थान पर ठहरने को जी न लगे, दस २ पन्द्रह मिनट में उस स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान पर चल दे, बल की हानि हो जाय, अत्यन्त निबल हो जाय, वह विक्षिप्त निश्चित रूप से मर जाता है, क्रमशः पूर्वोक्त लक्षण एक वर्ष में उत्पन्न हो जाते हैं, परन्तु स्वल्परूप से सभी साथ ही उत्पन्न होते हैं, ऐसे उन्मादी की आयु को एक वर्ष की कह कर छोड़ दे उसकी चिकित्सा न करे ॥ २० ॥

उदावर्ती मनःशून्यो विभ्रान्तो भोजनं द्विषन् ।
ईदृगुन्मादयुक्तो यो न तं पश्येद् भिषग्वरः ॥ २१ ॥

जिस उन्मादी—पागल का सदा पेट चढा रहे, मन से शून्य—ज्ञान रहित, सदा घवड़ाया सा बना रहे, भोजन से द्वेष रखे, सामने भोजन आवे तो उसे फेंक दे, अथवा स्वयं उठ कर चल दे, भोजन न करे, इस पूर्वोक्त प्रकार के लक्षणों से युक्त उन्मादी पागल की उत्तम वैद्य चिकित्सा न करे। समस्त दुर्लक्षणों के मिलने पर ही त्याग करे असमस्त दुर्लक्षणों के मिलने पर चिकित्सा करे ॥ २१ ॥

क्रोधिनं त्रासविभ्रान्तं मुहुर्मूर्छासमाकुलम् ।
तृषाहास्यपरीतास्यं दृष्ट्वोन्मत्तं परित्यजेत् ॥ २२ ॥

जिसे क्रोध आ गया हो, त्रास-भय से घवड़ाया हो, और बार बार मूर्छा आती हो, अर्थात् मूर्छा से व्याप्त अधिक समय तक मूर्छा ठहरती हो, मुख तृष्णा और हास्य से व्याप्त हो, अर्थात् प्यास अत्यधिक लगती हो। सदा हँसते रहे, ऐसे उन्मत्त पागल को देखकर छोड़ दे, मरणासन्न जानकर उसकी चिकित्सा न करे ॥ २२ ॥

मिथ्याभूतं तमो जाग्रद् घोरं पश्यति चक्षुषा ।
सोऽपस्मारमुपेत्यैव वत्सरेऽन्तं गमिष्यति ॥ २३ ॥

जो मनुष्य मिथ्या (विद्यमान रहित) झूठे ही अपनी आँखों से जागता हुआ घोर अन्धकार को देखता है, वह एक वर्ष के मध्य में अपस्मार-मिर्गी-की बीमारी पाकर नाश को प्राप्त हो जायेगा। अर्थात् एक वर्ष के अन्दर उसे मिर्गी की बीमारी होगी, और उसी में वह मर जायगा, दूसरे वर्ष तक नहीं जियेगा ॥ २३ ॥

अरिष्टमेतत्समुदीरितं मया विलोक्य विज्ञाय चिकित्सकः सुधीः ।
परित्यजेत् तादृशरोगिणं यतो लभेत लोकेषु यशो धनानि च ॥२४॥

इति श्री महामहोपाध्याय पंडित मथुराप्रसादकृते
रोगिमृत्यु-विज्ञाने आयुर्विज्ञाने
द्वितीयोऽध्यायः ।

इस अरिष्ट के स्वरूप लक्षण को चरकादिक ग्रन्थों को देखकर मैंने कहा है। उत्तम वैद्य इन लक्षणों को समझकर पूर्वोक्त लक्षण-युक्त रोगी का परित्याग कर दे, जिससे वह जनता के मध्य में यश को पाता है और सद् वैद्य होने के कारण अत्यधिक धन को भी पाता है ॥२४॥

इति श्री महामहोपाध्याय पंडित मथुराप्रसाद दीक्षित कृत
रोगिमृत्यु-विज्ञान का द्वितीय अध्याय ।

—:०:—

अथ तृतीयोऽध्यायः

ज्ञानमिन्द्रियजं चित्तं सुखदुःखादिकान्यपि ।
स्वकात्मानं नयत्येतत् तेन भृत्यमदो मतम् ॥ १ ॥

चित्त-मन इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान को अर्थात् रूप रसादिकों को और सुख-दु:खों को अपनी आत्मा के पास पहुँचा देता है, इस कारण यह मन आत्मा का नौकर (भृत्य) है, क्योंकि प्रभु के सदृश अपनी आत्मा के पास नौकर के समान उक्त ज्ञान को और सुख-दु:खादिकों पहुँचाता है। तात्पर्य यह है कि यदि मन इन्द्रियों के साथ सम्वन्ध न करे, तो देखते हुये सुनते हुए भी ज्ञान नहीं होता है ॥ १ ॥

शुद्धं मनो भृत्यभूतं वेत्ति जीवस्य निर्गतिम् ।
तामेव स्वप्नमाश्रित्य ब्रूते स्वस्थमपि स्फुटम् ॥ २ ॥

उत्तम नौकर के समान शुद्ध छल-प्रपञ्चादि रहित मन, शरीर से जीव के निकलने की गति आदि को जानता है। उसी गति का आश्रय लेकर मन, स्वस्थ किसी प्रकार का भी रोग जिसे नहीं है, ऐसे पुरुष को भी स्पष्ट 'तामेव' उसी जीव के निकलने का समय आदि को कह देता है। तात्पर्य यह है, कि कभी कभी किसी पुरुष को स्वप्न में ही मरणादि का ज्ञान दु:स्वप्नादि द्वारा हो जाता है ॥ २ ॥

निद्रितेऽध मनो ब्रूते जायमानं शुभाशुभम् ।
तज्ज्ञात्वा नैव दुष्येत न च तुष्येत्कदाचन । ३ ॥

अर्ध-निद्रावस्था में स्थित मन होने वाले शुभाशुभ को कह देता है, उस होनहार अशुभ को जानकर अशुभ-बुरा-न माने, और अच्छे

होनहार को जानकर संतुष्ट भी न हो, तात्पर्य यह है, स्वप्न-सूचक सूचना मात्र देने वाला है किन्तु जनक नहीं है, अतः हर्ष-विषाद निराधार है, वह तो अवश्य ही होगा ॥ ३ ॥

दृष्टः श्रुतश्चानुभूतः कल्पितश्चाभिलिप्सितः ।
दोषजो भाविकश्चैव स्वप्नः सप्तविधो मतः ॥ ४ ॥

यह स्वप्न सात प्रकार का है । १—दृष्ट, देखे हुये पदार्थ का स्वप्न । २—श्रुत सुने हुये वस्तु का । ३—अनुभूत, अनुभव किये हुये पदार्थ का स्वप्न । ४—कल्पित, सोने से पूर्व-निद्रा आने से प्रथम-कल्पना किया हुआ । ५—अभिलिप्सित, अत्यधिक उत्कण्ठा से चाहा हुआ, उसकी प्राप्ति की कल्पना करता हुआ सो जाय, उसी अवस्था में स्वप्न को देखे । ६—दोषज, किसी दोष के कारण स्वप्न । ७—भाविक, सद्-भावना के विचार से उत्पन्न । इस प्रकार से सात तरह का स्वप्न होता है ॥ ४ ॥

पूर्वोक्ता अफला ज्ञेयाः पञ्चापि भिषजां वरैः ।
दिवा स्वप्नोऽतिदीर्घश्च बह्वल्पोऽप्यफलो मतः ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त—दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, कल्पित, और अभिलिप्सित इन पाँचों प्रकार के स्वप्नों को वैद्य निष्फल समझे, इन स्वप्नों का सद्-असद् किसी प्रकार का फल नहीं होगा, दिन का स्वप्न अथवा बहुत लम्बा स्वप्न, तथा बहुत ही छोटा स्वप्न, ये स्वप्न भी निष्फल होते हैं ॥ ५ ॥

पूर्वरात्रे च यः स्वप्नो दृष्टः सोऽप्यफलो भवेत् ।
दृष्ट्वा पुनः स्वपेन्नैव स सद्यः स्यान्महाफलः ॥ ६ ॥

पूर्वरात्रि में देखा हुआ स्वप्न अल्पफल होता है, प्रभात-समय जिस स्वप्न को देखकर सोये नहीं, वह स्वप्न शीघ्र पूर्ण रूप से फल को देता है ॥ ६ ॥

योऽशुभं स्वप्नमालोक्य सुप्त्वा पश्येत् शुभान्वितम् ।
शुभं तत्र फलं विद्यादशुभं नष्टमादिशेत् ॥ ७ ॥

जो मनुष्य अशुभ स्वप्न को देखकर सो जाय और फिर शुभ स्वप्न को देखे, तो फिर शुभ स्वप्न का फल होगा और अशुभ स्वप्न का फल नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

अरुणोदयवेलायां दृष्टः स्वप्नः शुभाशुभः ।
फलं जनयते शीघ्रं पुन स्वापविवर्जितः ॥ ८ ॥

अरुणोदय के समय देखा हुआ शुभ अथवा अशुभ स्वप्न शीघ्र ही फल को उत्पन्न करता है, यदि स्वप्न देख कर फिर सोये नहीं ॥ ८ ॥

अथ तस्य फलं वच्मि स्वस्थे यातं तथातुरे ।
यो यं रोगं जनयते तदेतदपि वक्ष्यते ॥ ९ ॥

अब स्वप्न के फल को कहता हूँ, स्वस्थावस्था में उत्पन्न होने वाले अथवा रुग्णावस्था बीमारी के समय दृष्ट स्वप्न के फल को कहता हूँ। जो स्वप्न जिस रोग को उत्पन्न करता है वह भी कहूँगा ॥ ९ ॥

उष्ट्रैर्वा गर्दभैर्वापि श्वभिर्वा दक्षिणं दिशम् ।
यः स्वप्ने याति यक्ष्मा तं विनिहत्यैव मुञ्चति ॥ १० ॥

जो मनुष्य स्वप्न में ऊँटों के गर्दभों के अथवा कुत्तों के साथ, दक्षिण दिशा को जाता है, उसे यक्ष्मा होगा, और वह असाध्य–उस स्वप्न-द्रष्टा पुरुष को मार कर ही छोड़ेगा ॥ १० ॥

भूतैः साकं पिबेन्मद्यं स्वप्ने वा कृष्यते शुना ।
स चोग्रं ज्वरमासाद्य ध्रुवं प्राणान् विमुञ्चति ॥ ११ ॥

जो मनुष्य स्वप्न में भूत प्रेत आदि के साथ मद्य पीवे, अथवा कुत्ते से खींचा जाय, अथवा घसीटा जाय, वह उग्र संन्निपात ज्वर को

प्राप्त होकर प्राणों को छोड़ेगा, अर्थात् शीघ्र ही सन्निपात ज्वर से मरेगा ॥ ११ ॥

लाक्षारक्ताम्बराभं यः पश्यत्याकाशमन्तिकात् ।
स रक्तपित्तरोगेण म्रियते वत्सरान्तरे ॥ १२ ॥

जो मनुष्य स्वप्न में लाक्षा रङ्ग के वस्त्र के सदृश आकाश को पास में देखता है वह वर्ष के अन्दर उसी वर्ष में रक्त-पित्त की बीमारी से मरता है॥ १२ ॥

रक्तमाल्याम्बरैर्युक्तो रक्तदेहो मुहुर्हसन् ।
स्त्रिया हृतश्च स्वप्ने यः स रक्तं प्राप्य सीदति ॥ १३ ॥

जो स्वप्न में लाल माला, लाल वस्त्रों को धारण किये हुये, लाल देह से युक्त स्त्री के साथ जाता है वह रक्त-पित्त (रक्त के वमन) को प्राप्त होकर मरता है ॥ १३ ॥

शूलाध्मानं चान्त्रकूजा दौर्बल्यं चातिमात्रया ।
नखरेषु च वैवर्ण्यं स गुल्मेनावसीदति ॥ १४ ॥

जो स्वप्न में, पेट का फूलना और पेट में दर्द तथा आंतों का कुडकुडाना अर्थात् आँतों में शब्द होना, अपने शरीर की अत्यन्त दुर्वलता और नखों में दूसरे प्रकार का रंग, काले पीले नीले बैंगनी रंग के नखों को देखता है, वह गुल्म रोग से मरता है ॥ १४ ॥

यः स्वप्ने कण्टकाकीर्णां लतां हृद्येव पश्यति ।
स गुल्मरोगमासाद्य स्वदेहं मुञ्चति ध्रुवम् ॥ १५ ॥

जो मनुष्य स्वप्न में, काँटों से व्याप्त ऐसी लता को अपने हृदय पर व्याप्त अथवा हृदय में उत्पन्न अर्थात् छाती पर पैदा हुई देखता है, वह निश्चय ही गुल्म रोग को प्राप्त होकर देह को छोड़ेगा, अर्थात् मरेगा ॥ १५ ॥

नग्नो घृताप्लुताङ्गश्च जुहोत्यग्निमनर्चिषम् ।
यः स्वप्ने तं क्षणात्कुष्ठं प्राप्य चान्तं तु नेष्यति ॥ १६ ॥

जो मनुष्य स्वप्न में नग्न, घृत से सराबोर-शरीर में खूब घृत लगा हुआ, अर्चि-रहित ज्वाला से शून्य अर्थात् राख के ढेर में होम करता है, उसे बहुत जल्द कुष्ठ रोग उत्पन्न होगा, और कुष्ठ रोग को प्राप्त होकर मरेगा ॥१६॥

यस्य चोरसि जायन्ते स्वप्ने पद्मानि भूरिशः ।
सोऽपि कुष्ठेन रोगेण मरिष्यति न संशयः ॥ १७ ॥

जिसके स्वप्न में अनेक बहुत से कमल वक्षःस्थल पर उत्पन्न हो जायँ वह भी कुष्ठ रोग से ही मरेगा; इसमें अणुमात्र भी संशय नहीं है, निश्चित समझो ॥ १७ ॥

स्वप्नेऽनेकविधं स्नेहं चाण्डालैः सार्धमापिबेत् ।
यः स स्वप्नोत्थितो मेहं लब्ध्वा नाशं गमिष्यति ॥ १८॥

जो मनुष्य स्वप्न में चाण्डालों के साथ अनेक प्रकार का घृत तैल आदि स्नेह को पीता है वह सोकर उठा हुआ जल्दी ही प्रमेह रोग को प्राप्त होकर मरेगा ॥ १८ ॥

स्वप्ने पश्येत् बहून् शब्दान् तथाऽनेकविधानपि ।
यः शृणोतीति सुस्थोऽपि सोऽपस्मारेण हन्यते ॥ १९ ॥

जो मनुष्य स्वप्न में बहुत से और अनेक प्रकार के शब्दों को सुनता है, अर्थात् मैं सुन रहा हूँ ऐसा स्वप्न देखता है, और सुस्थ होकर भी जो सुनता है, अर्थात् मैं सुन रहा हूँ, ऐसा समझता है, वह अपस्मार मिर्गी रोग से मरता है, उसे एक वर्ष के अन्दर ही मिर्गी रोग उत्पन्न होकर मार देगा ॥ १९ ॥

नृत्यन्तं मत्तमाविध्य हठात्प्रेतो नयेत यम् ।
तमपस्माररोगेण मृत्युर्हरति सत्वरम् ॥ २० ॥

स्वप्न में मत्त मतवारे और नाचते हुये जिसे प्रेत लपट कर जबरदस्ती कहीं ले जांय, उसे मृत्यु अपस्मार रोग से जल्दी ही मार देती है ॥ २० ॥

स्तब्धे स्वप्नेऽक्षिणी यस्य हनुमन्ये च दारुणे ।
हन्ति तं बहिरायामो गृहीत्वेत्यवगम्यताम् ॥ २१ ॥

जिसकी स्वप्न में आँखें स्तब्ध हो जायँ, अर्थात् पथरा सी जायँ, और ठुड्ढी-टोढी-की नसें अत्यन्त कठोर हो जायँ, उसे बाहरी सांसर्गिक अथवा लू या भूत प्रेतादि का आयाम-आवेश आकर जल्दी ही मार देगा, यह निश्चय समझो ॥ २१ ॥

अपूपान् शष्कुलीः स्वप्ने भुक्त्वा चेच्छर्दयेत्पुनः ।
तादृगेव ततो जाग्रद् नाशमाशु गमिष्यति ॥ २२ ॥

जो मनुष्य स्वप्न में मालपुआ पूड़ी खाकर वैसी ही जैसी खाई थी उसी प्रकार की कै कर देता है, तो फिर वह जाग कर जल्दी ही सप्ताह के मध्यमें ही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा ॥ २२ ॥

इमांश्चाप्यपरान्स्वप्नान् दारुणान् यो विलोकयेत् ।
स व्याधितो मृतिं गच्छेत् यद्वा क्लेशान् बहूनपि ॥ २३ ॥

जो मनुष्य इन पूर्वोक्त स्वप्नों को अथवा इसी प्रकार के कठोर स्वप्नों को अर्थात् मकान का गिरना, किसी अन्य का भी पानी में डूबना, पानी भरते हुये रस्सी से टूट कर घड़े का गिरना आदि स्वप्न को देखता है तो वह मनुष्य या तो मृत्यु को प्राप्त होता है, अथवा मृत्यु सदृश परम कष्टों को प्राप्त होता है, वह रुग्ण हो अथवा स्वस्थ, स्वप्न का फल अवश्य मिलेगा। हम यह प्रथम कह आये हैं कि स्वप्न मृत्यु आदि का जनक नहीं है किन्तु सूचक मात्र है ॥ २३ ॥

उत्तमाङ्गेषु जायन्ते यस्य स्वप्ने लतादयः।
सनीडाः पक्षिणश्चापि स मौढ्यं प्राप्नुयाद् ध्रुवम् ॥२५॥

स्वप्न में जिसके उत्तमाङ्गों में अर्थात् शिर अथवा वक्ष:स्थल में लता इत्यादिक उत्पन्न हो और उस लता में घोसला सहित पक्षी विद्यमान हों, ऐसा स्वप्न देखने वाला निश्चय से मूढ़ता को-विक्षिप्तता पागलपन को प्राप्त होगा ॥ २४ ॥

काकोलूकश्वगृध्राद्यैः स्त्रीभिश्चाण्डालपुक्कसैः।
भूतप्रेतपिशाचैर्यो वृतः स्वप्ने स नंक्ष्यति ॥ २५ ॥

काक-कौआ, उलूक-उल्लू पक्षी, श्व-कुत्ता, गृध्र-गीध, इत्यादिकों से अथवा स्त्रियों से, अथवा चाण्डाल, या पुक्कस—मीणा, वागरी, वरडा शासी, कञ्जर आदि नीच जाति से युक्त, अथवा भूत प्रेत पिशाच आदि से युक्त-पूर्वोक्तों से मिला हुआ हआ हाथ से हाथ पकड़े हुये स्वप्न में जो अपने को देखता है वह रोगी उसी रोग से, स्वस्थ किसी रोग से शीघ्र ही नाश को प्राप्त होगा, अर्थात् जल्द मरेगा ॥२५॥

लतावञ्जुलकर्मारैस्तृणपाशैश्च कण्टकैः।
स्वप्ने संकटमापन्नो यः स नाशमवाप्स्यति ॥ २६ ॥

जो स्वप्न में लता-किसी वनस्पति की वेलि से अथवा वञ्जुल-वेंत, या कर्मार-वाँसों से, या तृण-घास के ढेर समूह आदि से अथवा पाश-फसरी तथा कण्टक आदि से आपत्ति में पड़ जाय वह निश्चित अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगा ॥ २६ ॥

लतादिषु च यः स्वप्ने प्रमुह्येच्च पतेच्च वा।
यद्वा लगेदातुरोऽसौ मृत्युं वा दुःखमाप्नुयात् ॥ २७ ॥

जो स्वप्न में लता इत्यादिकों में फँसकर घवड़ा जाय अथवा गिर जाय अथवा निश्चेष्ट होकर उन्हीं में लग जाय वह रोगी मृत्यु

को प्राप्त होगा, और स्वस्थ नितान्त कष्ट को प्राप्त होगा, कभी-कभी रोगी भी अत्यधिक कष्ट पा कर स्वस्थ हो जाता है ॥ २७ ॥

पांशुव्याप्तक्षितौ किं वा वल्मीके भस्मनां चये ।
श्वभ्रे श्मशानगेहाद् वा स्वप्ने पाताद् विनंक्ष्यति ॥ २८ ॥

जो मनुष्य स्वप्न में धूलि से व्याप्त पृथिवी पर अर्थात् जहाँ वारीक धूलि का भदभद हो, ऐसी भूमि अथवा बाँवी पर—जहाँ सर्पों के निवास स्थान का गृह हो वहाँ, अथवा राख के ढेर पर यद्वा बड़े ऊँचे महल से अथवा श्मशान घर से अर्थात् दाह के समय लोगों के बैठने के लिये जो छायागृह बना होता है उससे जो गिरता है वह अवश्य नष्ट हो जाता है, अर्थात् मर जाता है ॥ २८ ॥

पङ्के कूपे तमोव्याप्ते मलिनेऽम्भसि मज्जति ।
स्रोतोवेगेन यः स्वप्ने नीतः सोऽन्तं प्रयास्यति ॥ २९ ॥

जो रोगी या स्वस्थ स्वप्न में कीचड़ में, अथवा अन्धकार से व्याप्त कुआँ में अर्थात् अंधे जल रहित कुआँ में, अथवा मलिन जल में डूबता है, अथवा नदी आदि जल के वेग से वह जाता है, वह मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

अभ्यङ्गं स्नेहपानं वा स्वप्ने बन्धपराजयौ ।
वमिं विरेचनं यद्वा यातो नाशं प्रयास्यति ॥ ३० ॥

जो स्वप्न में तैल आदि को देह में अत्यन्त मसलता है लगाता है, अथवा तैल का पान करता है, यद्वा किसी रज्जु आदि से बन्धन को या पराजय को प्राप्त हो अथवा वमन या विरेचन को प्राप्त हो वह नाश को (मरण को) प्राप्त होगा ॥ ३० ॥

हिरण्यं लभते किं वा कलहं कुरुते जनैः ।
स्वप्ने प्राप्नोति हर्षं यः स दुःखं याति मृत्युवत् ॥ ३१ ॥

जो स्वप्न में सुवर्ण को पाता है, अथवा बहुत से मनुष्यों के साथ झगड़ा, लड़ाई करता है, अथवा स्वप्न में खुश होता है वह मृत्यु सदृश दुःख को प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

कुपितैश्चापि पित्राद्यैर्भर्त्सितः पांशुचर्मणोः ।
प्रपातानुगतः स्वप्ने यः स नाशमवाप्नुयात् ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य स्वप्न में कुपित पितरों से धमकाया जाय, डाँटा जाय अथवा धूलि या चर्म-चाम में अथवा प्रपात में जहाँ झरना या नदी की धार गिरती है उसमें गिराया जाय, वह नाश (मृत्यु) को प्राप्त होगा ॥ ३२ ॥

सूर्याचन्द्रमसोदन्तदीपनक्षत्रचक्षुषाम् ।
पतनं वा विनाशं वा स्वप्ने दृष्ट्वा न जीवति ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य स्वप्न में सूर्य, चन्द्रमा, दाँत, दीप, नक्षत्र, आँख किसी एक या अनेक के पतन या विनाश को देखता है, वह नहीं जीता है, जल्दी ही मर जाता है ॥ ३३ ॥

उपानद्-युगनाशं वा भेदनं पर्वतस्य वा ।
स्वप्ने पश्येच्च यो रोगी स नाशमुपयास्यति ॥ ३४ ॥

जो रोगी स्वप्न में जूतों के जोड़े को अथवा एक जूते के खो जाने को देखता है, अथवा पर्वत के तोड़ने, फोड़ने भेदने को देखता है वह अवश्य जल्दी मरेगा ॥ ३४ ॥

रक्तपुष्पाटवीं भूमिं पापकर्मालयं चिताम् ।
घोरं गुहान्धकारं यः स्वप्ने याति स नंक्ष्यति ॥ ३५ ॥

जिस भूमि के रास्ता में अत्यधिक बहुत से लाल फूल फूले हों, ऐसी भूमि को अथवा पापालय जहाँ पशु-हिंसा होती हो, या अन्य प्रकार का दुराचार होता हो, अथवा चिता को अथवा घोर अत्यन्त

भयंकर गुफा के अन्धकार में जो रोगी स्वप्न में अपने को जाते हुये देखता है वह अवश्य जल्दी मरेगा ।। ३५ ।।

नग्नोऽत्युच्चैर्हसन् स्वप्ने रक्तस्रग् क्रव्यभुग्दिशि ।
कपियुक्तोऽटवीं गच्छेद् यः स लोकान्तरं व्रजेत् ।। ३६ ।।

जो नग्न:और अत्यधिक हँसता हुआ तथा लाल फूलों की माला पहिने हुये और बन्दर को साथ लिये हुये अर्थात् बन्दर नचाने वाला मदारी बना हुआ, दक्षिण दिशा के वन को स्वप्न में जाय, वह मर कर अन्य लोक में उत्पन्न होगा ।। ३६ ।।

काषायवसनान् क्रुद्धान् नग्नान् यो दण्डधारिणः ।
कृष्णानरुणनेत्रांश्च स्वप्ने पश्येत्स नंक्ष्यति । ३७ ।।

जो मनुष्य स्वप्न में कषाय वस्त्र अर्थात् गेरुआ वस्त्र धारण किये हुये और कुछ गुस्से से भरे हुओं को देखता है, अथवा नग्न दण्डधारी संन्यासियों को देखता है, अथवा लाल आँखें जिनकी हों ऐसे कृष्ण-वर्ण के अर्थात् काले २ मनुष्यों को देखता है, वह रोगी अथवा स्वस्थ किसी रोग को प्राप्त होकर मर जायगा ।। ३७ ।।

आचाररहिता पापा दीर्घकेशनखस्तनी ।
नीरागमाल्यवसना कृष्णा स्वप्ने गताऽशुभा ।। ३८ ।।

जो मनुष्य स्वप्न में आचार रहित दुराचारिणी अथवा हिंसादि पापों में अनुरक्त तथा दीर्घ केश-नख और दीर्घ स्तनवती तथा नीराग-मलिन कुम्हलाई माला युक्त तथा मलिन खराब मैले वस्त्रों को पहिने हुये, एवं काली कलूटी अभद्र स्त्री को स्वप्न में देखे तो अवश्य ही किसी प्रकार का अशुभ होगा ।। ३८ ।।

ईदृशा ह्यशुभाः स्वप्नाः रोगिणं घ्नन्ति निश्चयात् ।
सुस्थं जीवनसंदेहे, दुःखे द्राक्प्रापयन्ति वा ।।३९।।

इस प्रकार के अशुभ स्वप्नों को रोगी देखेगा तो अवश्य ही मरेगा और यदि सुस्थ नीरोग मनुष्य देखेगा तो उसके जीवन में संदेह है अथवा उसे जल्दी ही कोई घोर कष्ट प्राप्त होगा ॥ ३९ ॥

वर्णप्रमाणसंस्थानैराकृत्या प्रभयाऽथवा ।
छाया विवर्तते स्वप्ने यस्यासौ न चिरं वसेत् ॥ ४० ॥

जिस पुरुष की छाया स्वप्न में वर्ण से अर्थात् छाया प्रतिबिम्ब कुछ नीलिमा युक्त श्वेत होता है, परन्तु उसे स्वप्न में अपनी छाया लाल पीली दीखे, तथा प्रमाण से अत्यधिक लम्बी अथवा संभाव्यमान योग्यता से अधिक छोटी देखे, अथवा संस्थान ठहरी हुई नहीं किन्तु हिलती झूलती देखे, अथवा आकृति से भिन्न जिस छाया का आकार हो अर्थात् स्वरूपानुरूप आकार न हो, किन्तु कोई बड़ा और कोई छोटा अथवा प्रभा कान्ति से अर्थात् छाया में एक प्रकार की चमक शोभा हो, इस प्रकार स्वप्न में जिसकी छाया विपरिवर्तित बदली हुई देख पड़ती है, वह अधिक काल तक नहीं जीता है, तात्पर्य यह कि स्वप्न देखने वाला जो मनुष्य अपनी छाया को उक्त प्रकार की देखता है, वह अधिक समय तक जीवित नहीं रहता, चाहे बीमारी हो, अथवा स्वस्थ हो, दोनों के लिये यही फल है ॥ ४० ॥

यस्य स्वप्ने प्रतिच्छाया प्रभावर्णप्रमाणतः ।
वैपरीत्येन संजाता स वर्षान्नाधिकं वसेत् ॥ ४१ ॥

जिसकी प्रतिच्छाया परछाई प्रभा, वर्ण और प्रमाण से विपरीत हो जाय वह वर्ष से अधिक नहीं जियेगा, पूर्वोक्त वचन और इसमें यह भेद है, पूर्वोक्त श्लोक में अङ्ग प्रत्यङ्गों के वैपरीत्य होने पर फलादेश है, और इस श्लोक में समस्त छाया के वैपरीत्य होने का फलकथन है ॥ ४१ ॥

इमान्मयोक्तानशुभांस्तु रोगी स्वप्नान्विलोक्याशु मृतिं प्रयाति ।
सुस्थोऽपि रोगानथवाऽतिदुःखं यातीदृशं श्रीचरको ह्यवादीत् ॥४२॥

इन अशुभ स्वप्नों का जो मैंने वर्णन किया है, उन्हें रोगी देखकर जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त होता है और स्वस्थ मनुष्य उक्त प्रकार के स्वप्न को देखकर उग्र-अधिक दु:ख देने वाली-बीमारी को अथवा अन्य किसी प्रकार के महान् कष्ट को प्राप्त होता है, यह स्वप्न का फल आदिचिकित्सक चरक मुनि तथा अन्य आचार्यों ने वर्णन किया है, तदनुरूप मैंने भी कहा है ।। ४२ ।।

अविनाभावसंबन्धश्छायादेहात्मनां मतः ।
अतो देहपरित्यागे छायाप्यात्मगतिं वदेत् ।। ४३ ।।

छाया देह आत्मा इन तीनों का अविनाभाव संवन्ध है अर्थात विना देह के छाया नहीं होती है, यह विम्ब-प्रतिविम्व-भाव है, तो विना विम्व के प्रतिबिम्व नहीं होगा। विम्व-देह घट पट वृक्ष आदि के होने पर हीउसकी छाया होगी, इसी प्रकार देह आत्मा का भी अविनाभाव है, विना देह के आत्मा नहीं रहता है । अतएव देह से आत्मा के पृथक् होने को छाया वतायगा ।। ४३ ।।

छायायाश्च मुमूर्षुत्वे ज्ञानं मुनिरुदैरयत् ।
तदेतद् योगिनां छायापरकं न त्वयोगिनाम् ।। ४४ ।।

मरने में छाया के परिज्ञान को चरकादिक मुनि ने कहा है, परन्तु यह योगाभ्यासी युक्त योगी केवल ज्ञानी जिनको सदा भूत भविष्य वर्तमान का ज्ञान रहता है, अथवा युञ्जान योगी जिनको इच्छा करने पर तद् वस्तु का ज्ञान हो, उनकी छाया विषयक यह छाया का ज्ञान जानना, अयोगी-सर्वसाधारण योगाभ्यासरहित पुरुषों की छाया परक यह छाया ज्ञान नहीं है ।। ४५ ।।

सलिलातपदीपेषु ज्योत्स्नामुकुरयोरपि ।
प्रतिबिम्बेऽल्पदीर्घत्वान् मृत्युज्ञानमुपादिशेत् ।। ४५ ।।

जल, धूप दीप, ज्योत्स्ना और दर्पण में प्रतिविम्ब के न्यूनाधिक होने पर स्वल्पकाल में होने वाले मृत्यु को कहे ॥ ४५ ॥

छायापुरुषसिद्धानामेवेत्येतत्तु विश्रुतम् ।
न तु सर्वेषु दृष्टा सा मृत्युज्ञानस्य बोधिका ॥ ४६ ॥

छाया पुरुष जिनको सिद्ध है तत्परक ही यह छाया से मृत्युज्ञान को जानना, सर्वसाधारण-जिनको छायापुरुष सिद्ध नहीं है, उन पुरुषों के विषय में यह छाया से मृत्यु ज्ञान नहीं होता है, क्योंकि उनकी छाया में किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता है ।४६

देहात्मानावभिन्नौ च कुरुतः सकलां क्रियाम् ।
अत आत्मगतिं ब्रूते छाया वैकृत्यमागता ॥ ४७ ॥

देह और आत्मा अभिन्नरूप से व्यवहार में रहते हैं, क्योंकि विना देह के आत्मा मोक्षातिरिक्त अवस्था में नहीं रहता है, अतः व्यावहारिक समस्त कार्य देह आत्मा मिलकर ही करते हैं, इसलिये विकृति को प्राप्त छाया आत्मा की गति को कहती है, अर्थात् विभिन्न प्रकार के विकारों से तत्तत्कार्य को कहती है ॥ ४७ ॥

अनुयाता न कस्मिंश्चिद् प्रत्यक्षमवलोक्यते ।
तथापि चरकोक्तत्वात् फलं तस्या उदीर्यते ॥ ४८ ॥

यह छाया का ज्ञान अनुगत रूप से किसी भी पुरुष में प्रत्यक्ष नहीं देखा गया है, परंतु चरक में छाया ज्ञान को कहा है, अत एव मैं भी विकृतिप्राप्त छाया के फल को कहता हूँ ॥ ४८ ॥

यस्याक्ष्णोर्मध्यमायातां सर्पाकृत्या कुमारिकाम् ।
प्रतिच्छायामयीं वैद्यः पश्येत्तं परिवर्जयेत् ॥ ४९ ॥

जिस रोगी के आँखों में सर्प के आकार की कुमारिका (कन्या) की प्रतिच्छाया देख पड़े उसे वैद्य छोड़ दे । उसमें उत्पन्न मरण का अरिष्ट जानकर उसकी चिकिसा न करे ॥ ४९ ॥

हीना वाऽप्यधिका छाया द्विधाऽऽयाता विलोक्यते ।
छिन्ना भिन्नाऽऽकुला यस्य च्छाया स्यात्स मृतोपमः ॥५०॥

प्रतिविम्ब रूप छाया अत्यधिक कम, अथवा ज्यादा अथवा कटी हुई दो भाग हो, तो इस प्रकार की अरिष्टबोधिका होती है, और जिस पुरुष की छिन्न-भिन्न अथवा आकुल सी छाया देख पड़े वह मृत के समान बहुत जल्द मरने वाला है।

विशिरा विस्तृता तन्वी प्रतिच्छाया भवेद् यदि ।
तदा षण्मासमात्रेण जीवन्तं तं स निर्दिशेत् ॥ ५१ ॥

यदि लम्वी अथवा छोटी शिरारहित छाया हो, अर्थात् जिसकी छाया में मस्तक न देख पड़े तो उसे छ महीना मात्र जीने वाला समझे ॥५१॥

पञ्चानामपि खादीनां छायाः पञ्चविधाः स्मृताः ।
नाभसी विमला स्निग्धा नीला स्यात्सप्रभेव सा ॥५२ ॥

आकाशादिक पाँच द्रव्यों की छाया पाँच प्रकार की होती है। नाभसी—आकाश सम्वन्धिनी छाया—प्रतिबिम्ब, विमल-निर्मल स्वच्छ तथा स्निग्ध-चिकनी, एवं नीले रंग की और प्रभासहित सी प्रतीयमान हो तो उसे नाभसी छाया समझे ॥५२॥

रूक्षाऽरुणा हतज्योतिः कृष्णा वा वायवी मता ।
विशुद्धा रक्तदीप्ताभा त्वाग्नेयी दर्शनप्रिया ॥ ५३ ॥

रूखी प्रभारहित कुछ लाल वर्ण की अथवा काली यदि छाया हो तो वह वायवी—वायु द्रव्य सम्वन्धिनी छाया होती है। विशुद्ध स्वच्छ किसी प्रकार के संसर्ग रहित, रक्तवर्ण की देदीप्यमान आभायुक्त, अर्थात् लालवर्ण की चमकीली और देखने में प्यारी हो तो वह आग्नेयी छाया होती है ॥५३॥

वैदूर्यमणिवत्स्निग्धा विशुद्धा चाम्भसी भवेत् ।
स्थिरा स्निग्धा घना श्लक्ष्णा श्वेता श्यामा च पार्थिवी ॥

यदि वैदूर्य मणि के समान स्निग्ध और स्वच्छ छाया हो तो उसे आम्भसी जल सम्बन्धिनी छाया समझे । यदि स्थिर और स्निग्ध स्नेहमयी एवं घन-सघन तथा श्लक्ष्ण-चिकनी, श्वेत अथवा काली छाया हो तो उसे पार्थिवी पृथ्वी-सम्बन्धिनी छाया समझे ॥५४॥

शुभोदयाश्चतस्रः स्युस्त्वासां गर्ह्या च वायवी ।
नाशक्लेशकरी प्रोक्ता वायवी त्वशुभोदया ॥५५॥

इन पाँच प्रकार की छायाओं में चार प्रकार की छायायें उत्तम भावी फल की सूचिका हैं, अर्थात् यदि १ नाभसी, २ आग्नेयी, ३ आम्भसी, ४ पार्थिवी छाया हो तो शुभ फल होगा, और यदि वायवी हो तो अशुभ फल होगा, वायवी छाया निन्द्य है । वह वायवी छाया नाश अथवा घोर क्लेश करने वाली है, अथवा कोई अशुभ होनहार की सूचिका है ॥५५॥

नाच्छायो नाप्रभः कश्चिद् भूलोके तु विलोक्यते ।
योगेन ता भाविजातं काले सर्वं वदन्ति तम् ॥५६॥

इस पृथ्वी मंडल में ऐसा कोई प्राणी नहीं है जिसकी छाया नहीं हो, अर्थात् सभी की सूर्य चन्द्र अग्नि आदि के तेज से प्रतिबिम्वित छाया होती है और प्रभा रहित भी कोई नहीं होता है । किंतु योग-प्रभाव से समय पर होनहार सब हालको छायाएँ—विभिन्न प्रकार की छायाएं कह देती है ॥५६॥

स्वप्नजातमिदमीरितं मया छाययाऽपि खलु योगिसंगतम् ।
सम्यगेतदवगम्य वैद्यराड् निर्दिशेत्फलमलौकिकं स्फुटम् ॥५ ॥

इति श्री महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसादकृते रोगिमृत्युविज्ञाने
स्वप्नच्छाययोर्विचारे तृतीयः परिच्छेदः ।

यह पूर्वोक्त स्वप्न भिन्न भिन्न कार्योत्पादक भिन्न २ प्रकार के कहे और योगियों की अथवा जिनको छाया पुरुष सिद्ध है, उनकी छाया से भी यह पूर्वोक्त फल कहा है, इसको उत्तम वैद्य अच्छी तरह समझ कर स्पष्ट इस अलौकिक-लोकोत्तर जनता में श्रद्धा विश्वास उत्पन्न करने वाले फल को कहे ॥५७॥

इति श्री म० म० मथुराप्रसाद-कृत रोगिमृत्युविज्ञान
के स्वप्नछाया-विचार में तृतीय
अध्याय समाप्त हुआ।

—:०:—

अथ चतुर्थोऽध्यायः

कतमानि शरीराणि रोगयुक्तानि रोगिणाम् ।
दृष्ट्वा यानि भिषक् कुर्यान्नैव तेषां चिकित्सनम् ॥ १ ॥

रोगियों के रोग युक्त कौन २ कितने प्रकार के शरीर हैं, जिन्हें देख कर वैद्य उन रोगियों की चिकित्सा नहीं करे ॥ १ ॥

कामलाक्ष्णो मुखं पूर्णं कपोलौ मांसलावपि ।
गात्रमुष्णं तथोद्वेगो यस्य स्यात्तं परित्यजेत् ॥ २ ॥

जिसकी आंखें पीली हो जाती हैं और शरीर भी पीला होता है, उसे कामलाक्षि कहते हैं, तो जिस कामलाक्षि रोगी का मुख भर जाय, सर्वतोभाव से भरा २ देख पड़े और कपोल अत्यन्त मांसल–मांस युक्त मोटे २ हो जायँ, शरीर उष्ण ज्वराक्रान्त के समान हो और सदा उद्वेग घवड़ाहट हो उसे मरणासन्न समझ कर छोड़ दे, उसकी चिकित्सा न करे ॥ २ ॥

शयनादुत्थितो वाढं मूर्छां याति मुहुर्मुहुः ।
सप्ताहात्परतो नैनं जीवन्तं परिभावयेत् ॥ ३ ॥

शयन-खट्वादि से उठा हुआ वारंबार अत्यधिक मूर्च्छा को जो प्राप्त होता हो, उसे सात दिन से अधिक जीवित न समझे । अर्थात् सात दिनौं के अन्दर वह मर जायगा ॥ ३ ॥

बलं यस्य क्षयं याति प्रतिश्यायो विवर्द्धते ।
तस्य नारीप्रसक्तस्य शोषो नाशाय कल्पते ॥ ४ ॥

जिसका बल बराबर क्रम से घटता जाता है, प्रतिश्याय-श्लेष्मा जुखाम बढ़ता जाता है, नारीप्रसक्त उस पुरुष के शोष-क्षय, शरीर का

सूखते जाना, नाश का जनक होता है। यही यक्ष्मा है, इसके समय भेद से तीन भेद होते हैं, क्षय १ शोष २ यक्ष्मा ३। क्षय रोग में ज्वर आता है, और रसासृग्मांस मेदस् अस्थि मज्जादिक सब धातुएं क्षीण हो जाती हैं और शुक्र दुर्बल-पतला हो जाता है, प्रतिक्षण विषय की इच्छा रहती है यदि आरम्भ में ही वीर्य की रक्षा करके ठीक उपचार किया जाय तो साध्य है, अन्यथा छ मास में शरीरान्त कर देता है। २ शोष, ज्वर युक्त पुरुष के कभी २ वायु कुपित होकर क्रमशः शरीर में शोप और दुर्बलता को उत्पन्न कर देता है यह एक वर्ष में प्राणान्त कर देता है। ३ यक्ष्मा—यह क्रमशः ज्वर के साथ दुर्बलता उत्पन्न करता हुआ एक सहस्र दिनों में रोगी को मार देता है, ये तीनों प्रायः असाध्य हैं परन्तु स्वर्ण के इनजक्सनों से और योग्य वसन्तमालती के सेवन से कभी २ लाभ हो जाता है, यदि शिरोवेदना पार्श्वतापादि ग्यारहों उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, तो कथमपि साध्य नहीं रहता है। ।४॥

अस्थानजो भवेन्मोहो ध्यानायासौ तथाऽरतिः।
उद्वेगो बलहानिश्च मृत्युरुन्मादपूर्वकः॥५॥

जिसको अस्थानज-अयुक्त वस्तु में मोह उत्पन्न हो, किसी वस्तु का ध्यान करता रहे और आयास-थकावट सी वनी रहे, अरति-किसी वस्तु में मन नहीं लगे। प्रायः एक स्थान पर नहीं ठहरे। उद्वेग-प्रतिक्षण घवड़ाहट हो और बल की हानि-दुर्बलता जिस उन्माद रोगी की बढ़ जाय वह अवश्य शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है॥ ५॥

त्रासक्रोधपरिक्रान्तं सकृच्च हसिताननम्।
बहुमूर्च्छातृषायुक्तं विक्षिप्तं परिवर्जयेत्॥६॥

त्रास उद्वेग घवड़ाहट और क्रोध से युक्त हो तथा कभी २ हँसे अथवा कुछ आन्तरिक विचार से मुसकुराहट-युक्त मुख हो, अत्यन्त

मूर्च्छा तथा तृष्णा युक्त हो, इस प्रकार के विक्षिप्त को छोड़ दे, उसकी चिकित्सा न करे, वह अवश्य ही थोड़े समय में मर जायगा ॥ ६ ॥

ब्रुवतो यस्य रुग्णस्य रुजत्यूर्ध्वमुरो भृशम् ।
भुक्तमन्नं बहिर्याति स्थितं चापि न जीर्यति ॥

हीयते च बलं प्राज्यं तृष्णा चातिविजृम्भते ।
जायते हृदि शूलं च तं विद्याद् विगतायुषम् ॥ ७–८ ॥

जिस रोगी के बोलते हुए उरः स्थल-छाती से अत्यधिक शब्द हो और भोजन किया हुआ अन्न वमन अथवा उद्‌गार से बाहर आ जाय और यदि बाहर न आये तो पचे नहीं अपच बना रहे तथा बल अत्यन्त घट जाय और प्यास सदा अत्यधिक लगे अर्थात् प्यास बढ़ती जाय और हृदय में शूल उत्पन्न हो, उस रोगी को गतायुष मरणासन्न समझे ॥ ७८ ॥

यस्य हिक्काऽतिगम्भीरा रुधिरं चातिसार्यते ।
तं भिषग् न चिकित्सेत यमराजानुगामिनम् ॥ ९ ॥

जिसको हिक्का-हिचकी अत्यन्त गम्भीर बड़े जोर की हो और हिक्का के साथ २ रुधिर भी आ जाय अथवा रुधिर का वमन हो उस रोगी को यमराज का अनुगामी समझ कर उसकी वैद्य चिकित्सा न करे ॥ ९ ॥

आध्मानमतिसारश्च यमेतौ व्याधितं नरम् ।
दुर्बलं विशतो रोगौ संदिग्धं तस्य जीवनम् ॥ १० ॥

आध्मान-पेट चढा रहे अर्थात् उदर में वायु सदा भरा रहै और अतीसार पतले दस्त आवे ये रोग, अतीसार और उदावर्त जिस दुर्बल मनुष्य को हो जायें, उस मनुष्य का जीवन संदेहास्पद है ॥ १० ॥

विड्मूत्रं ग्रथिलं यस्य श्वसनश्चातिवर्धते ।
निरुष्मो जठरी चैव नाधिकं स तु जीवति ॥ ११ ॥

जिसका विड् मूत्र ग्रथिल हो जाय अर्थात् मल मूत्र में गाँठ पड़ जाय और वायु अधिक बढ़ जाय, चलते-फिरते भी श्वास अधिक आवे, ऊष्मा रहित हो अर्थात् शरीर ठंढा रहे और पेट बढ़ जाय, सदा उदर फूला बना रहे, वह अधिक समय तक नहीं जीयेगा, जैसे उपद्रव न्यूनाधिक होंगे तदनुकूल मास पक्ष दिन जीवेगा ॥ ११ ॥

दुर्बलं यं नरं तृष्णाऽप्यानाहश्चातिबाधते ।
भिषक् तं न चिकित्सेत यदयं मरणोन्मुखः ॥ १२ ॥

जिस रुग्ण दुर्बल मनुष्य को पिपासा अत्यधिक लगे और आनाह उदर अत्यधिक फूल जाय, अध्मान-अफरा बढ़ता हुआ व्याकुलता उत्पन्न करे, उत्तम वैद्य उस रोगी की चिकित्सा न करे, क्योंकि वह मरणोन्मुख है। उसी दिन में यदि दोष कम है तो तीन दिन में अवश्य मर जायगा ॥ १२ ॥

पौर्वाह्निको ज्वरो यस्य कासः शुष्कश्च दारुणः ।
अबलो मांसशून्यस्च तं भिषक् परिवर्जयेत् ॥ १३ ।

जिसको दिन के पूर्व भाग में ज्वर आता है और खुश्क-सूखी कठोर उग्र अत्यधिक खांसी आती है, बल रहित-नितान्त निर्बल और मांस रहित, अस्थिचर्माविशिष्ट उस रोगी को वैद्य छोड़ दे, उसकी चिकित्सा न करे, क्यों कि वह असाध्य मरणोन्मुख है ॥ १३ ॥

अपराह्ण ज्वरस्तूग्रः श्लेष्मकासश्च दारुणः ।
दुर्बलो बलहीनश्च यः स प्रेतसमो मतः ॥ ४ ॥ १

जिस रोगी को अपराह्ण में दिन के उत्तर भाग में उग्र ज्वर आता अर्थात् एक सौ चार डिग्री अथवा इससे भी अधिक आता हो और खांसी और श्लेष्मा अत्यधिक घोर रूप से हो, एवं दुर्बल मांस रहित

ठठरी मात्रावशिष्ट रह गया हो, वह प्रेतसदृश मृतप्राय है, वैद्य उसके जीवन की आशा न करे ॥ १४ ॥

यस्य कुक्षिगतः शोथः पाणिपादं विसर्पति ।
दुर्बलः स्वल्पभोज्यश्च न स स्थास्यति वै चिरम् ॥ १५॥

जिस रुग्ण-ज्वरी अतीसारी प्लीहादि रोगाक्रान्त-के कुक्षिओं में शोथ हो जाय और हाथ पैरों में भी शोथ हो जाय, एवं दुर्बल-बल मांस रहित तथा स्वल्पभोज्य भोजन सर्वथा कम हो गया हो वह रोगी अधिक समय तक नहीं जीयेगा, यदि मुख पार्श्व रहित केवल हाथ पैर में शोथ हो जाय, तो वह मकोय आदि के उपचार से शान्त हो जाता है एवं द्वितीयावृत्ति में भी साध्य है, परन्तु यदि तृतीयावृत्तिमें भी शोथ हो जाय तो उसे अरिष्ट समझो, वह मुख पार्श्व में भी स्वल्परूपेण अवश्य रहेगा और वह रोगी आठ दिन में अथवा एक मास में अवश्य मर जायगा ॥ १५ ॥

यस्य पादगतः शोथः शिथिले पिण्डिके तथा ।
श्रोणी विसीदतश्चापि तं विद्याद् विगतायुषम् ॥१६ ॥

जिसके ज्वराजीर्णादि किसी प्रकार के रोगसे पैरोंमें शोथ हो और पिंडिका गोड पैरों के ऊपर का भाग शिथिल हो जाय और जंघाओं में वेदना तथा कुछ दुर्बलता सूखापन खुश्की आ जाय उसे विगतायुष समझो, दोषानुरूप छ महीने तक चल सकता है, छ महीने के मध्य में ही मरेगा, कभी कोई रोगी रसादि चिकित्सा में अधिक समय भी अशक्त अवस्था में जीवित देखा गया है परन्तु वह यक्ष्मा रोगाक्रान्त माना जायगा और वह भी तीन वर्ष से अधिक कथमपि नहीं जीता है ॥ १६ ॥

यस्य गुह्योदरे शोथो हस्तपादेऽपि सुस्थितः ।
हीनाः वर्णबलाहारास्तं भिषक् परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥

जिस रोगी के गुह्यस्थान-गुदा और जननेन्द्रिय पर शोथ हो जाय, तथा उदर हाथ पैरों में शोथ स्थिर हो जाय अर्थात् हाथ पैरों में अधिक शोथ हो जाय, एवं दुर्बल बल वर्ण आहार से रहित अथवा नितान्त कम हो जाय उस रोगी को वैद्य छोड़ दे, मरणोन्मुख समझकर उसकी चिकित्सा न करे ।। १७ ।।

यस्य वक्षोगतः श्लेष्मा नीलः पीतः सशोणितः ।
च्यवते सततं बाढं तं भिषक् दूरतस्त्यजेत् ।। १८ ।।

जिस रोगी की छाती में घरघराहट से अथवा अन्य प्रकार से श्लेष्मा मालूम दे, तथा काला पीला अथवा शोणितयुक्त कफ बहुत और सदा गिरे, उस रोगी को दूर ही छोड़ दे ।। १८ ।।

क्षीणमांसं समुच्छूनं कासज्वरनिपीडितम् ।
सान्द्रप्रस्रावकं वैद्यो हृष्टरोमाणमुत्सृजेत् ।। १९ ।।

जिसका मांस क्षीण हो गया हो अर्थात् अत्यधिक दुर्बल हो और समस्त देह में शोथ हो, अर्थात् सारे देह में सूजन हो, ज्वर कास से निपीड़ित, ज्वर हो और खाँसी का वेग हो, पेशाब-मूत्र गाढा हो और रोम सदा खड़े हों जैसे शीतज्वर-मलेरिया के आरम्भ में खड़े होते हैं वैसे खड़े हों उस रोगी को छोड़ दे ।। १९ ।।

यस्य कोष्ठे त्रयो दोषा लक्ष्यन्ते कुपिता इव ।
बलमांसविहीनस्य तस्य नास्त्यौषधं क्वचित् ।। २० ।।

जिस रोगी के शरीर में वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष कुपित से मालूम दें और वह रोगी बल मांस रहित हो गया हो तो उसकी चिकित्सा नहीं है, वह असाध्य है ।। २० ।।

ज्वरातिसारौ शोफान्ते यद्वा स्याच्च तयोः क्षये ।
दुर्बलस्य भवेतां चेत् न स जीवेत्कथंचन ।। २१ ।।

जिस मनुष्य के शोथ के अनन्तर ज्वर और अतीसार हो, अथवा ज्वर और अतीसार के अनन्तर शोथ हो, और वह यदि दुर्बल हो गया हो, क्षीणबल-सामर्थ्य रहित, अथवा मांस रहित अस्थिचर्मान्त्रावशिष्ट रह गया हो तो फिर वह कथमपि नहीं जी सकता, यदि वह दुर्बल नहीं है, तो साध्य है, दुर्बलता ही अरिष्टबोधिका है ॥ २१॥

तृषयाऽभिपरिक्लान्तः कृशः पाण्डूदरोऽपि च ।
आध्मानी कुपितोच्छ्वासः प्रत्याख्येयो भिषग्वरैः ॥ २२ ॥

जो पाण्डु रोगी पिपासा से अत्यन्त परिक्लान्त हो अर्थात् उसकी पिपासा जल पीते हुये शान्त न होती हो, अत्याधिक कृश हो गया हो, और उदर भी पीला हो गया हो, पेट की नाड़ी पीली देख पड़े, एवम् आध्मान हो उदर वायु से व्याप्त चढा हुआ हो और श्वास कुपित हो, ऊर्ध्वश्वास चलता हो तो उसे तुरन्त उत्तम वैद्य छोड़ दे, उसकी चिकित्सा का आरम्भ न करे ॥ २२ ॥

दुर्बलोऽतितृषाव्याप्तो हनुमन्याग्रहाप्लुतः ।
प्राणाश्चोरसि वर्तन्ते यस्य तं त्वातुरं त्यजेत् ॥ २३ ॥

जिसकी ठोढी की नाड़ी जकड़ गयी हो, दुर्बल पिपासा क्लान्त हो और प्राणवायु हृदय में हो, अर्थात् हृदय में उद्वेग (कंप) हो ऐसे रोगी को वैद्य छोड़ दे, मरणासन्न समझकर उसकी चिकित्सा न करे ॥ २३ ॥

नायच्छते न लभते सुखं किञ्चिदपि क्वचित् ।
क्षीणमांसबलाहारः स मरिष्यति सत्वरम् ॥ २४ ॥

जो रोगी किसी भी स्थिति में कुछ भी शान्ति को प्राप्त न हो सर्वदा उद्विग्न हो और कहीं पर भी सुख प्राप्त न हो, बल और मांस रहित, दुर्बल एवं निर्बल हो आहार रहित क्षुधा मन्द होने के कारण त्यक्ताहार हो गया हो, वह रोगी जल्द ही मरेगा, ऐसा समझ कर उसे छोड़ दे उसकी चिकित्सा न करे ॥ २४ ॥

विरुद्धहेतवो रोगा विरुद्धोपक्रमा भृशम् ।
वेगतश्चातिवर्द्धन्ते यस्य शीघ्रं स नंक्ष्यते ॥ २५ ॥

जिसके विरुद्ध हेतु वाले अनेक रोग उत्पन्न हो गये हों और उनका उपक्रम भी विरुद्ध हो, जैसे एक उपद्रव का उपशम करते हैं तो दूसरा उपद्रव अत्यधिक हो जाता है और वे रोग अथवा उपद्रव बड़े वेग से अत्यधिक स्वरूप में बढ़ते हैं तो वह रोगी शीघ्र ही नष्ट हो जायगा, उसी दिन मर जायगा ॥ २५ ॥

ग्रहणीमांसरुधिरं बलं ज्ञानं च रोगता ।
क्षीयन्ते त्वरयैतानि यस्य क्षिप्रं स नंक्ष्यते ॥ २६ ॥

ग्रहणी- मलग्राहिका शक्ति, मांस, रुधिर, वल, ज्ञान और रोग-ज्वरादिगत संतापादि-जिसके एक दम जल्दी से नष्ट हो जाँय वह जल्दी ही मर जायगा, संग्रहणी वालों के अन्तिम दिन दस्त वन्द हो जाते हैं, दस्त बन्द होने के समनन्तर केवल एक दिन या पन्द्रह घंटा जीता है, कभी २ एक दम सहसा सर्वथा ज्वर उतर जाने पर भी वह दो तीन घंटे में मर जाता है, अतः सर्वथा एक दम ज्वर उतारने का यत्न न करे ॥ २६ ॥

विकाराः सहसा यस्य परिसर्पन्ति सर्वतः ।
प्रकृतिर्हीयते चापि तं मृत्युर्नयते हठात् ॥ २७ ॥

जिस रोगी के विकार-उपद्रव सर्वतोभाव से सहसा वढ़ जाँय और प्रकृति (स्वभाव) भिन्न प्रकार की हो जाय, उसे मृत्यु अवश्य ले जायगी ॥ २७ ॥

प्रतिलोमानुलोमभ्यां संसृज्यन्ते रुजो भृशम् ।
ग्रहणी यस्य हीना स्यात् स पक्षान्नाधिकं वसेत् ॥ २८ ॥

जिसका रोग प्रतिलोम और अनुलोम से युक्त हो अर्थात् कभी घटे और कभी सहसा अधिक हो जाय और मलग्राहिका शक्ति

ग्रहणी-हीन, (कमजोर) हो जाय, तो फिर वह एक पक्ष से अधिक नहीं जीयेगा ॥ २८ ॥

रोगोपद्रवयुक्तस्य दुर्बलस्याल्पमश्नतः ।
बहुमूत्रपुरीषस्य मरणं तस्य निश्चितम् ॥ २९ ॥

जो रोगी उपद्रवयुक्त हो अर्थात् कास श्वास शोथादिक उपद्रव जिसके उत्पन्न हो गये हों और दुर्बल-बलरहित तथा कृश, अल्पभोजी जिसका आहार अत्यल्प रह गया हो, परन्तु मूत्र और पुरीष बहुत होता हो उसका मरण निश्चित है, बलानुरूप दिन मास की कल्पना करे, अधिक से अधिक तीन मास या तीन दिन में मर जायगा ॥ २९ ॥

अभ्यासादधिकं भुङ्क्ते दुर्बलो भृशमातुरः ।
स्वल्पमूत्रपुरीषो यस्तं भिषक् परिवर्जयेत् ॥३०॥

जो रोगी अभ्यास से अत्यधिक भोजन करता है, परन्तु अत्यन्त दुर्बल होता जाता है और अधिक भोजन करने पर भी मूत्र और पुरीष थोड़ा होता है, भोजन के अनुरूप मूत्र पुरीष नहीं होता है ऐसे रोगी को वैद्य छोड़ दे उसकी चिकित्सा न करे; क्योंकि वह असाध्य (अवश्य मरणोन्मुख) है ॥ ३० ॥

स्वस्थो व्याधिविहीनो यो भुङ्क्ते भोज्यं यथेच्छया ।
शश्वच्च बलवर्णाभ्यां हीयते न स जीवति ॥३१॥

जो स्वस्थ है एवं किसी प्रकार की बीमारी भी नहीं है, यथेच्छ जैसा जितना सदा भोजन करता था वैसे ही भोजन करता है, भोजन में न्यूनाधिक विकार नहीं है परन्तु प्रतिदिन क्रमशः बल एवं प्रभा (छवि) से कम होता जाता है अर्थात् बल वर्ण घटता जाता है, वह नहीं जीयेगा, छ महीने या तीन महीने में अवश्य मर जायगा ॥ ३१ ॥

नेत्रे चोर्ध्वगते यस्य मन्ये चानतकम्पने ।
तृषार्तः शुष्कतालुश्च निर्बलः स मरिष्यति ॥ ३२ ॥

जिसके नेत्र ऊअर चढ़े हुये हों और नेत्रों की धमनी कंपनशील नीचे झुकी हुई हों, तृषार्त-पिपासा शान्त न हो और तालु प्रदेश सूखा हो तथा निर्बल (बल रहित) हो वह अवश्य मर जायगा, दोष स्थिति के अनुरूप समय की वैद्य स्वतः कल्पना करे ॥ ३२ ॥

यस्य स्थूलौ कपोलौ स्तो ज्वरकासौ च दारुणौ ।
नाभिनन्दति चाप्यन्नं शूलवान् स मृतोपमः ॥ ३३ ॥

जिस शूल रोगी के कपोल स्थूल हो जाय और ज्वर खांसी उग्र रूप से बढ़ जाय, अन्न से रुचि हट जाय, कुछ भी भोजन न करे, उसे मरणासन्न समझे ॥ ३३ ॥

यस्य भ्रुवौ निपतितौ जिह्वा स्यात् कण्टकाचिता ।
ऊर्ध्वंव्यावृत्तजिह्वाक्षः स मरिष्यति सत्वरम् ॥ ३४ ॥

जिसकी भृकुटी, भौंहें नीचे की तरफ झुक जायँ और जिह्वा कण्टकों से युक्त हो जाय अर्थात् जीभ पर कांटे २ से मालूम दें, कोई वस्तु खाई न जा सके। तथा जिह्वा और आँखें उलट जाँय अथवा टेढी हो जायँ वह जल्दी ही मर जायगा ॥ ३४ ॥

शेफश्चात्यर्थमुत्सिक्तं वृषणौ निःसृतौ भृशम् ।
यद्वा तयोर्विपर्यासो विकृत्या मृत्युबाधकम् ॥ ३५ ॥

शेफस-जननेन्द्रिय अत्यन्त दब जाय, भीतर की तरफ़ चली जाय और वृषण-अण्डकोश बाहर की तरफ बढ़ कर आ जांय, अथवा विपरीत हो जांय जननेन्द्रिय अत्यधिक बढ़ जाय और वृषण अन्तर्गत हो जांय तो यह विकृति मृत्यु की बोधिका होती है, परन्तु अण्डकोशों में जल बढ़ जाने से अथवा वायु मांस मेदा के बढ़ जाने से इन्द्रिय में ह्रास हो जाने पर अरिष्ट की कल्पना नहीं करना ॥ ३५ ॥

सङ्घीभूतं भवेन्मांसं त्वचयाऽस्थि विलोक्यते ।
अनश्नतोऽल्पभोज्यस्य जीवनं मासमात्रकम् ॥ ३६ ॥

जिसका मांस इकट्ठा हो जाय और जहाँ से मांस गया है वहाँ की अस्थि-हड्डी-त्वचा के मध्य में स्पष्ट दिखाई दे, मन्दाग्नि, भोजन-रहित अथवा अल्प भोजन हो उसका जीवन केवल १ मास का है, अर्थात् वह एक मास मात्र जियेगा ॥ ३६ ॥

यदग्निवेशः समुदैरयत्स्वके चिकित्सकानामुपकारकेऽद्भुते ।
सुधासदृक्षे चरके सुवर्णितं मयाऽत्मसात्कृत्य तदेव गुम्फितम् ॥३७॥

इति श्री महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसादकृते
रोगिमृत्युविज्ञाने चतुर्थोऽध्यायः ।

जो अग्निवेश ऋषि जी ने वैद्यों के उपकारक अद्भुत अमृत सदृश चरकसंहिता नामक अपने ग्रन्थ में उत्तम प्रकार से वर्णन किया है, उसीको श्लोकवद्ध करके मैंने वर्णन किया है। चरक-ग्रन्थानुकूल ही इस अरिष्ट प्रकरण को समझो ।

इति श्री म० म० पं० मथुराप्रसादकृत रोगि मृत्युविज्ञान
का चतुर्थ अध्याय समाप्त ।

पञ्चमोऽध्यायः

पक्ष्माणि स्युर्जटावन्ति यैश्च दृष्टिर्निरुध्यते ।
यस्य रुग्णस्य तं वैद्यो न चिकित्सेत् कथंचन ॥ १ ॥

जिस रोगी के आँख पर की ब्यन्नी अर्थात् पलकों के बाल ऐसे जटायुक्त हो जाय कि जिससे उस रोगी की दृष्टि रुकजाय, कुछ भी दिखाई न पड़े, उस रोगी की वैद्य कथमपि चिकित्सा न करे, वह अवश्य उसी मास में मरणासन्न है ॥ १ ॥

शुष्यतो नेत्रपटले उच्छूनत्वं समागते ।
नेत्रयोरपि दाहः स्यात् यस्य सोऽन्तं गमिष्यति ॥ २ ॥

शुष्क नेत्र पटल—आँखों के पोटे यदि सूज जांय और नेत्रों में दाह-जलन जिसके उत्पन्न हो जाय वह अवश्य शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होगा ॥ २ ॥

भ्रुवोर्वा मूर्ध्नि पद्यावद् रेखाः स्युर्बहवः स्फुटाः ।
अपूर्वा अकृता यस्य स जीवति दिनत्रयम् ॥ ३ ॥

जिस रोगी के भौंहों में अथवा शिर के वालों में मार्ग की तरह अनेक रेखाएँ स्पष्ट अपूर्व (प्रथम वालों में नहीं पड़ती हो और कृत्रिम नहीं हो किन्तु प्राकृतिक रुग्णावस्था में) पड़ी हों वह रोगी तीन दिन जियेगा ॥ ३ ॥

रुग्णस्तु त्रिदिनं जीवेदरुग्णः षड् दिनानि च ।
प्रायश्चैतदरुग्णे तु क्वचिदेव विलोक्यते ॥ ४ ॥

रुग्ण-वीमार के यदि पूर्वोक्त रेखायें पड़ जांय तो केवल तीन दिन जियेगा और यदि स्वस्थ नीरोग के पूर्वोक्त रेखायें पड़ जांय

तो वह छ दिन जियेगा, ये पूर्वोक्त रेखायें प्रायः रोगी के ही देखी गयीं हैं स्वस्थ नीरोगी के कभी कहीं पर होती हैं ॥ ४ ॥

अभ्यङ्गरहिताः केशाः दृश्यन्तेऽभ्यङ्गसन्निभाः ।
यस्यातुरस्य स ज्ञेयो भिषग्भिः स्वल्पजीवनः ॥ ५ ॥

जिस रोगी के तैलादि अभ्यङ्ग रहित रूक्ष केश, अभ्यङ्ग सहित तैल से युक्त से मालूम दें वह रुग्ण थोड़े ही समय मेंवश्य मर जाय, यह जानो ॥ ५ ॥

यस्य चोत्पाटिताः केशा न बुध्यन्ते कथंचन ।
स रुग्णो बाऽप्यरुग्णो वा षड्रात्रान्नाधिकं वसेत् ॥ ६ ॥

जिसके उत्पाटित-खींचकर उखाड़े हुए बाल कथमपि मालूम न दें वह रुग्ण बीमार हो अथवा अरुग्ण (स्वस्थ) हो छ रात्रि से अधिक नहीं जियेगा ॥ ६ ॥

सरुजो नासिकावंशः पृथुत्वं यस्य गच्छति ।
उच्छूनवदनुच्छूनः स वर्ज्यो भिषजां वरैः ॥ ७ ॥

जिस रोगी का नासिकावंश पृथु पूर्वापेक्षया लम्बा मालूम दे और सूजा तो नहीं हो परन्तु सूजा सा मालूम दे, उसे उत्तम वैद्य असाध्य समझकर छोड़ दे, वह अवश्य स्वल्प दिनों में मर जायगा ॥ ७ ॥

यस्य नासाऽतिवक्रा स्याद् अत्यन्तं संवृताऽपि च ।
यद्वाऽतिविवृता शुष्का तं विद्याद् विगतायुषम् ॥ ८ ॥

जिस रोगी की नासिका अत्यन्त वक्र टेढ़ी हो जाय और नासिका-छिद्र—नथुना सर्वथा संवृत हो जाय अर्थात् वन्द हो जाय, अथवा विपरीत हो जाथ अर्थात् नासिका तो अत्यन्त टेढी हो परन्तु नासिका-छिद्र शुष्क और सर्वथा फैले खुले हुये हों, उसे विगतायुष—अर्थात् उसका जीवन समाप्त हो गया है—ऐसा समझे ॥ ८ ॥

यस्यास्यशब्दशिथिलावोष्ठौ शुक्लातिलोहितौ ।
श्यावौ नीलौ च विकृतौ तं रुग्णं परिवर्जयेत् ॥ ९ ॥

जिस रोगी के ओष्ठ मुख के शब्द में शिथिल हों अर्थात् शब्द करने में ओष्ठ पूरी तरह से कार्य न कर सकें, तथा शुक्ल अथवा अत्यन्त लाल या काले या नीले या विकृत–विकार–को प्राप्त हों उस रोगी को छोड़ दें, उसे मरणासन्न समझकर जवाब दे दें ॥ ९ ॥

यस्य श्वेततरा दन्ताः पुष्पिताः पङ्कसंवृताः ।
विकृत्यैवाशु जायन्ते न स रोगात्प्रमुच्यते ॥ १० ॥

जिसके दाँत खिले हुए पुष्प के समान अत्यन्त श्वेत हों और विकृति से शीघ्र ही पङ्क से–अर्थात् दाँतों के मैल से ढक जायँ, वह रोगी उस रोग से अच्छा नहीं होगा ॥ १० ॥

शूना विसर्पिणी श्यावा शुष्का विगतचेतना ।
कण्टकोपचिता गुर्वी स्तब्धा जिह्वाऽन्तकारिका ॥ ११ ॥

जिसकी जिह्वा सूजी-फैली-हुई काली, और सूखी हुई खुश्क हो तथा विगत चेतना-ज्ञान और चैतन्यरहित-हो तथा कण्टकों से व्याप्त जिह्वा पर काँटे से हों, गुर्वी और स्तब्ध-जड़ हो तो वह अन्तकरी प्राणान्त करने वाली होती है ॥ ११ ॥

दीर्घमुच्छ्वस्य यो ह्रस्वं पुनर्निःश्वस्य ताम्यति ।
क्रमशो विगतज्ञानं तं भिषक् परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

जो रोगी दीर्घ उछ्वास लेकर फिर ह्रस्व–हलका–श्वास लेते हुए दुःखी हो और क्रमशः धीरे-धीरे ज्ञानशून्य होता हो, उसे वैद्य छोड़ दे, वह अवश्य जल्दी मरेगा ॥ १२ ॥

अविच्छिन्नजलं यस्य घ्राणाद्वा नेत्रतो वहेत् ।
अतीसारी ज्वरी चापि न जीवति कथंचन ॥ १३ ॥

जिसके नासिका अथवा नेत्रों से अविच्छिन्न जल बहता हो, वह अतीसारी–अतीसार रोग वाला अथवा ज्वरी–ज्वर रोग वाला किसी प्रकार भी नहीं जीयेगा, वह तीन-या पाँच दिनों में मर जायगा ।।१३।।

पाणिपादं तथा मन्ये तालु चैवातिशीतलम् ।
आयुःक्षये तु जायन्ते क्रूराणि मृदुलानि वा ।। १४ ।।

हाथ पैर तथा ग्रीवा-कण्ठ के पश्चात् भाग की दोनों शिरा–नाड़ी और तालुप्रदेश मरण समय में अर्थात् मरण से कुछ पूर्व क्रमशः अत्यन्त शीतल-ठंढे हो जाते हैं और या तो अत्यन्त कठोर हो जाँयगे अथवा अत्यन्त मृदुल कोमल हो जायँगे ।। १४ ।।

जानुना जानुसंघट्टः पदोरुद्यम्य पातनम् ।
वक्त्रस्य मुहुरायामो मुमूर्षुं ब्रुवते त्वरा ।। १५ ।।

जो अपनी जानु से जानु को घट्टे, अर्थात्—जंघा से जंघा को घिसे और बारंबार पैरों को उठाकर पटके और मुख को बारंबार फैलावे, उसे जल्दी मरने वाला, सन्निपाती उसी दिन मरने वाला समझे ।। १५ ।।

रुग्णोऽज्ञानेन काष्ठाद्यैः लिखेद् भूमिं शिरोरुहान् ।
नखैश्छिन्देन्नखान् दन्तैर्यः स दीर्घं न जीवति ।। १६ ।।

जो अत्यधिक रुग्ण अज्ञान से (ज्ञान पूर्वक न होकर) काष्ठादि से काष्ठ अँगुली अथवा तृणादिक से भूमि में अथवा अपने विस्तर या भित्ति में अथवा जो पास में देखे उस पर कुछ लिखे, अथवा अज्ञान पूर्वक नखों से बालों को काटे, अथवा दाँतों से नखों को काटे, वह दीर्घकाल तक नहीं जियेगा, किन्तु तीसरे दिन मर जायगा ।। १६ ।।

दन्तान् खादति यो जाग्रत् अशान्त्याऽतिरुदन् हसन् ।
न च दुःखं विजानाति यः स मृत्युमुखं गतः ।।१७।।

जों रोगी जाग्रद् अवस्था में दाँतों से दाँतों को खाता है अर्थात् दाँतों को किर्रता है, अशान्ति से अत्यन्त रोता है, अथवा कभी हँसता है और दुःख को नहीं जानता वह रोगी मृत्युमुख प्राप्त है, उसी दिन चौवीस घंटों में मर जायगा ॥ १७ ॥

मुहुर्हसेन्मुहुः क्ष्वेडेत् शय्यां पादेन ताडयेत् ।
करेण मृगयेत् किंचित् स जीवति दिनत्रयम् ॥ १८ ॥

जो रोगी वारंवार हँसे अर्थात् अप्रासङ्गिक कारण के बिना ही वारंवार हँसे, तथा बारंबार क्ष्वेडा-सिंहनाद करे-गर्जे, और पैरों से शय्या का ताड़न करे, अर्थात् वारंवार पैर उठाकर शय्या पर पटके और अज्ञानपूर्वक हाथ से अपनी खाटपर अथवा इधर उधर कुछ ढूँढ़े, वह तीन दिन जियेगा ॥ १८ ॥

ग्रीवा शीर्षं न वहते न पृष्ठं भारमात्मनः ।
न हनुः पिण्डमास्यस्थं यस्य स त्रिदिनावधिः ॥ १९ ॥

जिस रोगी की ग्रीवा शिर को न धारण कर सके, अर्थात् शिर झुका हुआ ग्रीवा टूटी सी प्रतीत हो, तथा पीठ शरीर के भार को न सम्हाल सके, अथवा हनु-मुखका अधोभाग आस्य-मुख के ऊर्ध्व भाग कों धारण न कर सके, अर्थात् मुखका अधोभाग ठोढी आदि विकृत हो जाय, वह उसी दिन या तीन दिन के मध्य में अवश्य मर जायगा । उसके जीवन की तीन दिन की अवधि है ॥ १९ ॥

अकस्माज्ज्वरसंताप-स्तृषा मूर्च्छा बलक्षयः ।
सन्धिविश्लेषणं चापि यस्य स्यात्स मुमूर्षुकः ॥ २० ॥

जिसके ज्वर का संताप, प्यास, मूर्च्छा और बल, इनका क्षय अकस्मात् एक दम हो जाय और सन्धि विश्लेषण-हांथ पैर आदि की सन्धियाँ पृथक् २ हो जायँ वह मुमूर्षु है, उसी समय चार छ घंटों में मरेगा ॥ २० ॥

यस्य जिह्वोर्ध्वलग्ना स्यात् लालाऽतिच्यवते मुखात् ।
स्वेदज्वरोपतप्तश्चेज्जीवनं　तस्य　दुर्लभम् ॥२१॥

जिस रोगी की जिह्वा ऊपर नालु में लग जाय, और मुख से लाला (लार) अत्यधिक गिरे, और स्वेद–पसीना पर्याप्त हो–परंतु ज्वर का संताप अधिक हो, उसका जीना दुर्लभ है। प्रायः वह नहीं जियेगा ॥ २१ ॥

जिह्वा कण्ठमनुप्राप्ता नान्नं याति ततः परम् ।
बलं च क्षीयतेऽत्यर्थं जीवनान्तं स यास्यति ॥ २२ ॥

जिसकी जिह्वा कण्ठ में लग जाय और अन्न कण्ठ के आगे नहीं जाय, बल अत्यन्त क्षीण हो जाय, वह जीव (जन्तु) मृत्यु को प्राप्त हो जायगा, उस की चिकित्सा नहीं है ॥ २२ ॥

शिरो विक्षिपते कष्टात् मुञ्चयित्वा स्वकौ करौ ।
ललाटप्रस्रुतस्वेदः　श्लथबन्धो　मृतोपमः ॥ २३ ॥

अपने दोनों हाथों को छुड़ाकर बड़े ही कष्ट से शिर को घुमा सकता हो ललाट-मस्तक से पसीना अत्यधिक आता हो और हाथ पैर आदि के नाड़ी-बन्धन ढीले हो गये हों, वह मृत-मरे हुये के सदृश है, उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ २३ ॥

यस्य स्यातां परिस्रस्ते कपिशे हरिते दृशौ ।
तस्य नाशकरो व्याधिर्विनाश्यैवोपशाम्यति ॥ २४ ॥

जिसके दोनों नेत्र घूम जाँय अथवा अपने बन्धनों को छोड़ दें और रूपान्तर को प्राप्त कपिश–धूम्रवर्ण के हो जांय अर्थात् कुछ पीलापन लालिमा लिये हो जांय, अथवा हरित वर्ण के हो जांय उसकी व्याधि विनाश कारिणी है, उस रोगी को मार करके ही जायगी, अर्थात् वह उसी रोग से मरेगा ॥ २४ ॥

व्याधीनां चयमापन्नः शुष्कास्यो ज्ञानवर्जितः ।
यस्तं लुप्तक्रियाभोगं ज्ञात्वा मरणमादिशेत् ॥ २५ ॥

जो रोगी व्याधियों के समुदाय को प्राप्त हो अर्थात् जिसे अनेक रोग उत्पन्न हो गये हों, शुष्कास्य–पिपासा से मुख सूखता हो अर्थात् पिपासा शान्त न हो और ज्ञानरहित हो, इस प्रकार के क्रिया भोग शून्य उस रोगी को समझकर उसके मरण को कह दे, उस मरणासन्न की चिकित्सा न करे ॥ २५ ॥

संवृता लोमकूपाः स्युः शिराश्च हरिता अपि ।
अम्लाभिलापो यस्य स्यात्स पित्तान्मृत्युमाप्नुयात् ॥ २६ ॥

जिसके सब रोमकूप संवृत-ढक जायँ, और नसें हरितवर्ण की हो जायँ, तथा खट्टा खाने की विशेष इच्छा हो, वह पित्त रोग से अवश्य शीघ्र मरेगा ॥ २६ ॥

प्रभया शोभतेऽत्यर्थं शरीरं चातिशुष्यति ।
बलं यस्य क्षयं याति तं यक्ष्मा नाशयिष्यति ॥ २७ ॥

जिसकी प्रभा अत्यधिक शोभायमान हो, अर्थात् शरीर की कान्ति बढ़ जाय परन्तु शरीर अत्यधिक सूखता जाता हो, और उसके बल का क्रमशः नाश होता हो उस रोगी को यक्ष्मा मार देगा, अर्थात् असाध्य यक्ष्मा उत्पन्न होकर उसे मारेगा ॥ २७ ॥

अंसाभिताप आनाहश्छर्दनं शोणितस्य च ।
पार्श्वशूलं च हिक्काः स्युर्यस्य शोफश्च सोऽन्तभाक् ॥ २८ ॥

जिसके अंसाभिताप हो सदा पार्श्व भाग अभितप्त रहता हो और आनाह–सदा पेट चढ़ा रहता हो, कभी-कभी रुधिर की कै–वमन होती हो, पार्श्वशूल हो, हिक्काओं का जोर हो, अधिक हिक्का आती हो–और शरीर में शोथ हो गया हो वह अवश्य शीघ्र उसी दिन मरेगा ॥ २८ ॥

कुष्ठी शोथी च यक्ष्माप्तो मधुमेही तथोदरी ।
बलमांसविहीनाः स्यु-र्दुश्चिकित्स्यतमा मताः ॥ २९ ॥

कुष्ठी कुष्ठ रोग वाला, शोथी-जिसके शरीर में सोजा हो, यक्ष्माप्त जो यक्ष्मा रोगाक्रान्त हो, मधुमेही-मधुमेह मूत्र में अत्यधिक मधुभाग उत्पन्न हो, पिपीलिका पेशाब पर अधिक आती हो और उदरी उदर-रोगी, यदि ये बल मांस क्षीण हो जाय अर्थात् नितान्त निर्बल शक्ति रहित हो जाय और मांस विहीन दुर्बल हो जाय, तो सर्वथा दुश्चि-कित्स्य कष्ट साध्य हैं ॥ २९ ॥

वातव्याधिरपस्मारी गुल्मी चापथ्यसेविनः ।
एते मांसबलोन्मुक्ता अचिकित्स्या भिषग्वरैः ॥ ३० ॥

वातव्याधि-वातव्याधि रोगाक्रान्त, गठिया देह में दर्द, देह में शोजिस हो जाना, इत्यादि कई प्रकार से वातव्याधि मानी जाती है, अविशेषात् किसी प्रकार की भी क्यों न हो, सभी वातव्याधि पद से मानी जायँगी, अपस्मारी-मिर्गी रोग वाला, गुल्मी-जिसके शरीर में अत्यधिक बड़ा फोड़ा हो, अथवा दुःखद अनेक पिडिका-फोड़े हों, और अपथ्य सेवी-परहेज नहीं करने वाला, इस प्रकार के रोगी बल मांस रहित अर्थात् निर्बल और दुर्बल नितान्त दुश्चिकित्स्य हैं, उत्तम वैद्य इनकी चिकित्सा न करे। अतः बल मांस रहित कदाचित् ही साध्य हो सकता है, क्योंकि कालान्तर में अरिष्ट जब उत्पन्न हो जाय तो उस अरिष्ट को देखकर परित्याग कर दे ॥ ३० ॥

उपद्रवेण रहितान् विकारपरिवर्जितान् ।
पूर्वोक्तान्सकलानेतान् चिकित्सेत रसैर्भिषक् ॥ ३१ ॥

उपद्रवों से रहित-अर्थात् किसी प्रकार के घातक उपद्रव उत्पन्न नहीं हुए हों और विकार से रहित—किसी के विकृत लक्षण उत्पन्न न हों इस प्रकारके पूर्वोक्त-वातव्याधि अपस्मारी आदि रोगियों की वैद्य

रसादिक से चिकित्सा करे। अरिष्ट के उत्पन्न न होने से सर्वथा अचिकित्स्य नहीं हैं ॥ ३१ ॥

रेचनाद् विगतानाहो महातृड्भिः समर्दितः।
नीरक्तः पुनराध्मानी यः स बाढं प्रनंक्ष्यति ॥ ३२ ॥

यदि रेचन से आनाह—अफारा अच्छा हो जाय, परन्तु पिपासा अत्यधिक हो जाय, और नीरक्त—रुधिर रहित नितान्त दुर्बल, अस्थि चर्मावशिष्ट हो और यदि पुनः आध्मान हो जाय तो वह निश्चय से मृत्यु को प्राप्त होगा और यदि पुनः आध्मान नहीं होता है तो चिकित्सा करते हुए बल रुधिर आदि अवश्य आ जायगा, किन्तु द्वितीयावृत्त आध्मान ही घातक अरिष्ट है ॥ ३२ ॥

कण्ठोरसोर्मुखस्यापि विबद्धत्वाच्च यो नरः।
पेयं पातुं न शक्नोति स तु बाढं मरिष्यति ॥ ३३ ॥

जो रोगी या नीरोगी कण्ठ और उरस्-छाती तथा मुख के विबद्ध होने से पेय भी नहीं पी सकता, वह निश्चय ही मर जायगा, क्योंकि प्राण पोषक कोई पदार्थ नहीं पहुँचता ॥ ३३ ॥

स्वरस्य दुर्बलीभावं क्षयं च बलवर्णयोः।
अकस्माद् रोगवृद्धिं च विलोक्य गदिनं त्यजेत् ॥ ३४ ॥

जिसका स्वर दुर्बल हो गया हो अर्थात् झीनी आवाज हो और बल तथा चेष्टा शरीर के स्वरूप आदि का क्षय-नाश हो गया हो, और अकस्मात्—विशेष कारण के बिना सहसा रोग की वृद्धि देख कर उसी रोगी को असाध्य मरण समझ कर छोड़ दे ॥ ३४ ॥

ऊर्ध्वश्वासी गतोष्मा च शूलोपहतवंक्षणः।
दुःखं चाप्यभिगच्छन् यस्तं भिषक् परिवर्जयेत् ॥ ३५ ॥

ऊर्ध्वश्वासी-जिसे ऊर्ध्वश्वास उत्पन्न हो गया हो और शरीर में ऊष्मा नहीं हो अर्थात् शरीर ठंडा हो गया हो, तथा वङ्क्षण-ऊरुओं

के सन्धिस्थान में शूल होती हो और दुःख को प्राप्त हो, अर्थात् वेचैनी शरीर वेदनादि से कष्ट हो, इस प्रकार के रोगी को वैद्य मुमूर्षु समझ कर छोड़ दे ।। ३५ ।।

अपस्वरं ब्रुवन् यस्तु स्वस्याप्तं मरणं वदेत् ।
अपस्वनं च शृणुयात् तस्याप्तं मरणं वदेत् ।। ३६ ।।

जिसका शब्द अपस्वर हो अर्थात् जिसका स्वर खराव हो गया हो, और वार २ अपने मरण को कहता हो और अपस्वन को सुने, शब्दरहित आकाश से आते हुए शब्द को सुने, विना शब्द के शब्द सुने, उसका मरण प्राप्त है, यह समझे ।। ३६ ।।

सहसैव ज्वरो यस्य दुर्बलस्योपशाम्यति ।
तस्यापि जीवनं किंचित् संशये प्रतितिष्ठति ।। ३७ ।।

जिस ज्वरी दुर्बल रोगी का ज्वर सहसा–एकदम अकस्मात् शान्त हो जाता है, उसका जीवन संशयास्पद है, यदि नाड़ी ठीक है तो यत्न करे, अन्यथा नहीं ।। ३७ ।।

भेषजैर्विविधैर्मासं रसैश्चोपचरेत् क्रियाम् ।
यदि लाभं न लभते तमसाध्यं वदेत्तदा ।। ३८ ।।

अनेक प्रकार के क्वाथ चूर्ण अवलेहादि से और रसाभ्रादिक से एक मास तक उपचार–ठीक प्रकार से पथ्यादि पालन से चिकित्सा करे, परंतु फिर भी यदि लाभ नहीं हो तो उसे असाध्य समझे। अरिष्ट ज्ञान का तद्विषयक प्रकार बताते उसकी परीक्षा करे ।। ३८ ।।

पुरीषवीर्यनिष्ठ्यूतान्यपां मध्ये च पातयेत् ।
मज्जन्ति चेद् विजानीयाद् असाध्योऽयं मरिष्यति ।।३९।।

उस रोगी का पुरीष–विष्ठा पाखाना, वीर्य और निष्ठ्यूत-थूक कुछ कफ सहित होने पर स्पष्ट प्रतीति हो सकेगी, इनमें से किसी को

जल में डाले, यदि जल के मध्य में डूब जायँ तो उस रोगी को असाध्य समझो, वह अवश्य ही मर जायगा ॥ ३९ ॥

दृश्यन्ते बहवो वर्णा निष्ठ्यूते यस्य रोगिणः ।
चेदपः प्राप्य सीदेयुर्न स जीवति मृत्युभाक् ॥ ४० ॥

जिस रोगी के थूक में अनेक प्रकार के वर्ण—रङ्ग दीख पड़ें, परंतु वे सब जल में थूक के प्राप्त होने पर नष्ट हो जायँ वह नहीं जीयेगा। अवश्य ही तीन मास के अन्दर-अथवा दोषाधिक्य में एक मास में मर जायगा ॥ ४० ॥

पित्तमुष्णानुगं यस्य शंखौ प्राप्य विमूर्छति ।
स रोगः शंखको नाम्ना रुग्णं हन्ति त्रिभिर्दिनैः ॥ ४१ ॥

जिस मनुष्य का उष्णतानुग पित्त शंख—ललाट के अस्थिभाग को अर्थात् कनपटी प्रदेश को प्राप्त होकर उसकी लालिमा नष्ट हो जाय इसी प्रकार उठती रहे अथवा दीर्घ होकर नष्ट हो वह शंखक रोग कहलता है, यह असाध्य रोग है, और शंखक रोगी केवल तीन दिन जीवित रहता है ॥ ४१ ॥

फेनिलं रुधिरं यस्य मुखात्प्रच्यवते मुहुः ।
कुक्षिश्च तुद्यते शूलैः स वर्ज्यो यमलालितः ॥ ४२ ॥

जिसके मुख से फेनयुक्त रुधिर वारं वार गिरे और पार्श्व भाग में पीड़ा या शूल होने से दुःखी हो, वह रोगी यमराज गृहीत है, ऐसा समझ कर उसे छोड़ दे, उसकी चिकित्सा न करे ॥ ४२ ॥

वेगान्मांसबलौ क्षीणौ रोगवृद्धिररोचकः ।
जायन्ते यस्य रुग्णस्य त्रीण्यहानि स जीवति ॥ ३ ॥

जिस रोगी के वेग से बड़ी जल्दी मांस और बल क्षीण हो जांय और प्रकृत जो रोग उस समय हो उसकी वृद्धि तथा अरोचकता

भोजन के लिये अत्यन्त अरुचि हो जाय, ऐसा रोगी केवल तीन दिन जियेगा ॥४३ ॥

मृत्यूपकण्ठमायाते रुग्णे वैद्यो विभावयेत् ।
परिलक्ष्यैव निश्चित्या-रिष्टज्ञाता त्यजेत्पुनः ॥ ४४ ॥

मृत्यु के समीप में प्राप्त रोगी को वैद्य अच्छी तरह देखे और अरिष्ट के लक्षण को देख कर उस अरिष्ट का पूर्णरूपेण निश्चय कर के ही उस रोगी का परित्याग करे। तापर्य यह है कि अरिष्ट-ज्ञान के निश्चय से ही रोगी का त्याग करे, अरिष्टाभास में नहीं और जब तक अरिष्ट उत्पन्न नहीं हो तब तक अवश्य चिकित्सा करे ॥४४॥

पुनर्वसोरेव वचः प्रमाणतो
निदर्शितोऽयं सदरिष्टसंचयः ।
भवेच्च यज्ज्ञानबलाच्चिकित्सकः
सभासु लोकेषु चिकित्सकाग्रणीः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसादकृते
रोगिमृत्युविज्ञाने पञ्चमोऽध्यायः ।

यह उत्तम अरिष्ट का संग्रह पुनर्वसु—चरकनिर्माता श्रीपतञ्जलि ऋषि जी के वचनानुसार मैंने कहा है, जिस अरिष्ट ज्ञान से वह वैद्य सभाओं में और समस्त वैद्यों में चिकित्सकाग्रणी सर्वश्रेष्ठ वैद्य हो जायगा ॥ ४५ ॥

इति श्री म० म० पं० मथुराप्रसाद कृत रोगिमृत्युविज्ञान का पञ्चम अध्याय समाप्त ।

—०❀०—

अथ षष्ठोऽध्यायः

शीघ्रमेव मुमूर्षूणामिदं ज्ञानमुदीर्यते ।
येन स्पृष्टो ह्यरिष्टेन न जीवति कथंचन ॥ १ ॥

शीघ्र जल्दी-मरणासन्नों का यह ज्ञान मैं कहता हूँ, कि जिस जिस अरिष्ट से स्पृष्ट (युक्त) रोगी कभी भी नहीं जीता है, अवश्य ही मरणोन्मुख है ॥ १ ॥

वातष्ठीलाः सुसंवृत्ताः जायन्ते हृदि दारुणाः ।
तृषाभिश्चाभितप्तस्य प्राणा गच्छन्ति सत्वरम् ॥ २ ॥

अत्यन्त दारुण, सुसंवृत्त-बँधी हुई वातष्ठीला-वायु की गुच्छी जिसके हृदय में उत्पन्न हो, अर्थात् अत्यन्त पीड़ाजनक जिसके हृदय में वायु की ग्रन्थि उत्पन्न हों और पिपासा अत्यधिक उसे संतप्त करे, पिपासा शान्त न हो, वह शीघ्र ही मरेगा ॥ २ ॥

नृदेहे विचरन् वातो वक्रां नीत्वा च नासिकाम् ।
पिण्डिके शिथिले कृत्वा सद्यो हरति जीवितम् ॥ ३ ॥

मनुष्य के शरीर में घूमता हुआ वायु जिसकी नासिका को टेढी कर दे और पिंड़िकाओं को पैर की फीलियों को शिथिल कर दे, उसके प्राण जल्दी निकल जायँगे, वह बहुत काल तक नहीं ठहरेगा ।

भ्रुवौ निपतिते स्थाना-दन्तर्दाहश्च दारुणः ।
हिक्काकरस्त्वसौ रोगो यस्य स्यात्स मृतोपमः ॥ ४ ॥

भ्रू—भ्रुकुटी जिसकी गिर जाँय, अर्थात् भौं अपने स्थान से नीचे आ जाय और हृदय में दारुण दाह हो, हिक्का अधिक आवें, यह हिक्काकर रोग जिसको उक्त लक्षणयुक्त उत्पन्न हो जाय वह मृत पुरुष के समान है, अर्थात शीघ्र ही मरेगा ॥ ४ ॥

क्षीणशोणितमांसस्य वातश्चोर्ध्वगतिर्भवन् ।
उभे मन्ये समीकृत्य प्राणान् हरति सत्वरम् ॥ ५ ॥

जिसका रुधिर और मांस क्षीण हो गया हो, उसका वायु ऊर्ध्व-गामी होता हुआ दोनों मन्याओं को अर्थात् ग्रीवा की दोनों नाड़ियों को बराबर करता हुआ, अर्थात् दोनों नाड़ियों को मिलाकर शीघ्र ही प्राण हर लेता है, ऐसी स्थिति में शीघ्र मरेगा ॥ ५ ॥

अन्तरैव गुदं गच्छन् नाभिं च सहसाऽनिलः ।
कृशयन् वंक्षणौ गृह्णन् सद्यो हरति जीवितम् ॥ ६ ॥

नाभि और गुदा के मध्य में सहसा चला हुआ, अर्थात् एक दम से नाभि और गुदा के मध्य में जोर से जाता हुआ, दुर्बल उस रोगी को करता हुआ, वंक्षण-पार्श्व प्रदेश को पकड़ता हुआ अर्थात् पार्श्व-प्रदेश में घोर वेदना उत्पन्न करता हुआ अनिल (वायु) जल्दी ही उस रोगी को मार देता है, अर्थात् वह मरणासन्न है ॥ ६॥

विततः पार्श्वकाग्रेषु गृह्णन् वक्षश्च मारुतः ।
स्तिमितस्यायताक्षस्य प्राणान् हरति सत्वरम् ॥ ७ ॥

पार्श्व के अग्रभाग में वितत (विस्तीर्ण) फैला हुआ प्रतीत हो, अर्थात् पार्श्व के अग्रभाग में वेदना हो और छाती को जकड़े हुए मारुत (वायु) निश्चल और आँखों को फैलाये हुए प्राणी के जीव को जल्दी हर लेता है, वह मुमूर्षु है ॥ ७ ॥

गुदं च हृदयं चोभे गृहीत्वा पवनो बली ।
हिनस्ति त्वरितं प्राणान् दुर्बलस्य विशेषतः ॥ ८ ॥

वली-उत्कृष्ट सर्व शक्तिमान् (क्योंकि "पित्तः पङ्गुः कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्") वायु गुदा और हृदय को साथ ही ग्रहण करता हुआ प्राणों का शीघ्र

नाश कर देता है, दुर्बल को विशेष कर अर्थात् वह अवश्य जल्दी मरेगा ॥ ८ ॥

गुदवङ्क्षणयोर्मध्ये विचरन् मारुतो बली ।
श्वासमुत्पादयंश्चापि व्याधितं हन्ति सत्वरम् ॥ ९ ॥

बली वायु गुदा और वंक्षण के मध्य में चलता हुआ, श्वास को उत्पन्न कर शीघ्र ही रोगी को मार देता है ॥ ९ ॥

नाभिवस्तिशिरोमूत्र-पुरीषाणि प्रभञ्जनः ।
विबध्य जनयन् शूलं सद्यो मुष्णाति जीवितम् ॥ १४ ॥

प्रभञ्जन-महान् उग्र वायु नाभि, वस्ति (नाभि के अधोभाग की शिरा) मूत्राशय, शिर-मस्तक, मूत्र और पुरीष को बाँध कर शूल को उत्पन्न करता हुआ शीघ्र ही प्राणों को हर लेता है, अर्थात् वह मुमूर्षु (मरणासन्न) है ॥ १० ॥

तुद्येते वंक्षणौ यस्य शूलवातेन सर्वतः ।
पुरीषं भिद्यते तृष्णा वर्धते स व्रजेद् द्रुतम् ॥ ११ ॥

जिसका वङ्क्षण-ऊरुओं का सन्धिस्थान, शूलजनक वायु से अत्यधिक सर्वतोभाव से वेदना करै और मल फट गया हो, तथा पिपासा अत्यधिक हो, वह जल्द ही मरणोन्मुख परलोक जा रहा है।

मारुतेनाप्लुतो देहः केवलं यस्य दृश्यते ।
भिन्नं पुरीषं तृष्णा च स प्राणांस्त्वरितं त्यजेत् ॥ १२ ॥

जिसका शरीर केवल-सर्वतः वायु से व्याप्त हो और मल फट गया हो अर्थात् पाखाना छितरा सा हो, तथा पिपासा अत्यधिक हो वह मृत समान शीघ्र ही मरनेवाला है ॥ १२ ॥

भृशं वातेन शोथः स्योच्छरीरे यस्य देहिनः ।
पुरीषं भिद्यते तृष्णा वर्धते स मृतोपमः ॥ १३ ॥

जिसके शरीर में वायुजन्य शोभा अत्यधिक हो, और मल फट गया हो तथा पिपासा अत्यधिक हो, वह मृत समान शीघ्र ही मरने वाला है ।। १३ ।।

आमाशयसमुत्थाना यस्य स्यात्परिकर्तिका ।
तृष्णा गुदग्रहश्चोग्रः स ज्ञेयो मरणोन्मुखः ।। १४ ।।

जिसके आमाशय से उत्पन्न कैंची के काट के समान, वेदना-उग्र पीडा हो, तृष्णा हो, और उग्र-भयंकर गुदग्रह हो, जिसमें एनेमा आदि कार्य न कर सके, वह मरणोन्मुख है ।। १४ ।।

पक्वाशयमभिव्याप्य विसंज्ञं विदधद् मरुत् ।
कण्ठे घुर्घुरकं शब्दं कुर्वन्नाशु विनाशयेत् ।। १५ ।।

पक्वाशय में व्याप्त होकर जो वायु रोगी को विसंज्ञ-चेष्टारहित कर दे तथा कण्ठ में घुर घुर शब्द करे, वह उस रोगी को शीघ्र ही मार देगा ।। १५ ।।

चूर्णकेन समं वक्त्रं दशनाः कर्दमोपमाः ।
शिप्रायन्ते च गात्राणि यस्य सोऽस्ति मुमूर्षुकः ।। १६ ।।

जिसका चूने के समान या पिसे हुये सफेद आटे के समान मुख हो जाय और दाँत कर्दम के समान मैले हों तथा शरीर के प्रत्येक अङ्ग से पर्याप्त स्वेद-पसीना आता हो वह मुमूर्षु (मरना चाहता) है। अधिक समय नहीं ठहरेगा ।। १६ ।।

तृष्णाश्वासशिरोरोग-मोहदौर्बल्यकूजनैः ।
शकृद्भेदेन च स्पृष्टः प्राणानाशु जिहासति ।। १७ ।।

जो रोगी तृष्णा-पिपासा, श्वास-ऊर्ध्वश्वास, शिरोग्रह-शिरोवेदना, मोह-मूर्च्छा, दौर्बल्य-दुर्बलता, कूजन-कुछ अव्यक्त शब्द करना, अर्थात् अव्यक्त काँखना और शकृद्भेद-विच्छिन्न मल से युक्त हो जाय तो वह जल्दी ही प्राणों को त्यागेगा ।। १७ ।।

भिषग्वरो वेत्ति य एव रोगिणं मुमूर्षुकं ज्ञानमयेन चक्षुषा।
स विज्ञलोकेष यशस्वितां व्रजेत् धनानि वैद्येषु धुरीणतामपि ॥

इति श्रीमहामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसाददीक्षितकृते
रोगिमृत्युविज्ञाने षष्ठोऽध्यायः।

जो उत्तम वैद्य ज्ञानरूपी अपनी आँखों से मरणासन्न रोगी को समझ लेता है अर्थात् प्रत्यक्ष की तरह देख लेता है, वह विद्वत्समाज में यशस्विता को प्राप्त होता है और धन (उत्तम वैद्य यशस्वी होने से) प्राप्त होता है तथा समस्त वैद्यों में कालज्ञान होने के कारण सर्व-श्रेष्ठ माना जाता है ॥ १८ ॥

इति श्री म० म० पं० मथुराप्रसाद कृत रोगिमृत्युविज्ञान का
षष्ठ अध्याय समाप्त।

—:०:—

अथ सप्तमोऽध्यायः

अथातिदीर्घकालेन मुमूर्षुं निर्गदं ब्रुवे।
यज्ज्ञानाज् ज्ञायते लोकैर्योगीवासौ भिषग्वरः॥ १ ॥

अब अति दीर्घकाल में मरने वाले बीमारी रहित, परंतु अरिष्ट का लक्षण जिन के उत्पन्न हो गया है, उनके मरण का समय कहता हूँ, जिसके ज्ञान से वह उत्तम वैद्य योगी के सदृश लोगों में समझा जाता है ॥ १ ॥

येन दत्तं बलिं काकाः क्षुधिता नोपभुञ्जते।
स वर्षाभ्यन्तरे प्राणान् परित्यक्ष्यति निश्चयात् ॥ २ ॥

नीरोग स्वस्थ अथवा रुग्ण अस्वस्थ जिसके हाथ से दी हुई वलि को बुभुक्षित कौवे नहीं खाते हैं, वह एक वर्ष के मध्य में निश्चय से मर जायगा ॥ २ ॥

अरुन्धतीं न यः पश्येत् सप्तर्षीणां समीपगाम्।
वर्षमात्रमिह स्थित्वा परलोकं स यास्यति ॥ ३ ॥

आकाश में सप्तर्षि नक्षत्रों के समीप में स्थित अरुन्धती नक्षत्र को जो नहीं देखता है, अर्थात् जिसे अरुन्धती नक्षत्र नहीं देख पड़ता है, वह मनुष्य एक वर्ष मात्र इस लोक में ठहर कर फिर परलोक चला जायगा, अर्थात् मर जायागा ॥ ३ ॥

दीपनिर्वाणदुर्गन्धं न च जिघ्रति यः सुधीः।
सोऽपि वर्षमिह स्थित्वा परलोकं पुनर्व्रजेत् ॥ ४ ॥

जो विद्वान् बुझे हुये तैल के दीप की गन्ध को नहीं सूंघता, अर्थात् जिसको बुझे हुये तैल के दीपकी गन्ध न मालूम दे; वह भी केवल एक

वर्ष इस लोक में ठहर कर फिर परलोक को चला जायगा। एक वर्ष में मर जायगा ॥ ४ ॥

स्वल्पज्योतिर्विकल्पस्थो दुश्छायो दुर्मनाः सदा।
रतिं न लभते क्वापि स वर्षान्नाधिकं वसेत् ॥ ५ ॥

स्वल्प ज्योति, आँखों की ज्योति कम हो अथवा शारीरिक कान्ति कम हो तथा किसी वस्तु या कार्य का निश्चय न हो; किन्तु प्रत्येक वस्तु या कार्य का विकल्प करता रहे, दुश्छाय जिसकी छाया अयुक्त खराब हो और सदा उदासमन रहता हो तथा कहीं पर भी शान्ति को न प्राप्त हो, सदा उद्विग्न सा बना रहे, वह एक वर्ष से अधिक नहीं जियेगा ॥ ५ ॥

यस्य स्नातस्य देहस्थं शुष्यते सकलं जलम्।
हृदिस्थं नैव शुष्येत वर्षमात्रं स जीवति ॥ ६ ॥

जिसके स्नान करने पर समस्त देह का जल सूख जाय; परन्तु हृदय पर स्थित अर्थात् छाती के अधोभाग का जल न सूखे वह केवल एक वर्ष और जियेगा ॥ ६ ॥

स्वस्थस्य यस्य गात्रस्थं चन्दनं परिशुष्यते।
ललाटस्थं न शुष्येत स वर्षान्नाधिकं वसेत् ॥ ७ ॥

जिस स्वस्थ पुरुष के शरीर में लगा हुआ चन्दन सूख जाय; परन्तु ललाट—माथे पर लगा हुआ चन्दन न सूखे वह एक वर्ष से अधिक नहीं जियेगा ॥ ७ ॥

यस्य स्नातानुलिप्तस्य प्रथमं हृद् विशुष्यते।
देहं कालेन पश्चात् तु स वर्षं नैव तिष्ठति ॥ ८ ॥

स्नातानुलिप्त-स्नान किये हुये तथा प्रत्येक अंग में चन्दन लगाये हुये जिस स्वस्थ पुरुष का प्रथम हृदय शुष्क हो जाय और देह का

कुछ काल पश्चात् सूखे वह वर्ष भर नहीं जियेगा, वह वर्ष से प्रथम ही मर जायगा ॥ ८ ॥

स्मृतिर्बुद्धिर्बलं शीलं नष्टं यस्यास्त्यहेतुकम् ।
षण्मासादधिकं नैवं स स्थास्यति कथंचन ॥ ९ ॥

स्मृति-वस्तु का स्मरण, बुद्धि, बल, शील, अच्छा चरित्र अथवा स्वभाव जिसका बिना कारण के ही नष्ट हो जाँय वह छ महीने से अधिक नहीं जियेगा । अर्थात् छ महीने के मध्य में ही मर जायगा ॥ ९ ॥

ललाटे जायते यस्य धमनीजालमद्भुतम् ।
पूर्वं त्वदृश्यमानं स षड्मासान्नाधिकं वसेत् ॥ १० ॥

जिसके ललाट मस्तक पर नवीन (जन्म के समय का न हो) अद्‌भुत परम सुन्दर नाड़ियों का जाल देख पड़े और वह नाड़ियों का जाल पहले कभी नहीं देखा गया हो, अर्थात् जन्म का न हो वह छ महीना मात्र ही जियेगा ॥ १० ॥

द्वितीयाचन्द्रतुल्याभिर्लेखाभिश्चाप्यनुत्तमम् ।
यस्य भालं विभाव्येत षण्मासान्तं तमादिशेत् ॥ ११ ॥

द्वितीया चन्द्र के सदृश जिसके मस्तक पर रेखायें अथवा उभरी हुई नाड़ियाँ अत्युत्तम परम सुन्दर दीख पडें, उन रेखाओं से मस्तक सुशोभित मालूम दे वह छ महीना से अधिक नहीं जियेगा ॥ ११ ॥

संमोहो देहकम्पश्च गतिर्वचनमेव च ।
विक्षिप्तस्येव यस्य स्युः स मासान्नाधिकं वसेत् ॥ १२ ॥

संमोह-अयुक्त वस्तु में नितान्त प्रेम, देह कम्प, गति-गमन चलना फिरना और बोलना जिसके विक्षिप्त (पागल) के समान हो जायँ वह एक महीना से अधिक नहीं ठहरेगा ॥ १२ ॥

संभ्रमोऽतिप्रलापश्च भेदोऽस्थ्नामतिदारुणः ।
त्रयोऽपि युगपद् यस्य जायन्ते स मृतोपमः ॥ १३ ॥

संभ्रम-घबराहट अथवा भ्रान्ति अन्य में अन्य प्रकार का ज्ञान और अत्यन्त प्रलाप, निरर्थक बहुत बकना तथा देह की हड्डियों में अत्यन्त पीड़ा, हड़फूटन मालूम हो कि हड्डियाँ देह की फूट रही हैं, ये तीनों युगपत् साथ ही जिसके उत्पन्न हो जायँ वह मृतक समान है अर्थात् सर्वथा असाध्य हैं, वह थोड़े समय तक ठहरेगा ॥१३ ॥

पाणिपादं मुखं चापि यस्य शुष्यन्ति सर्वतः ।
उच्छूयन्तेऽथवा नूनं मासमेव स जीवति ॥ १४ ॥

जिसके हाथ पैर और मुख नितान्त सूख जाँय अथवा सूज जाँय वह केवल एक मास जियेगा । यदि तीनों नहीं सूजे हों दो ही सूजे हों तो अधिक समय तक जी सकता है; परन्तु छ महीना से अधिक कथमपि नहीं ठहरेगा ॥ १४ ॥

मस्तके वा ललाटे वा वस्तौ यस्यातिमेचका ।
द्वितीयाचन्द्रकुटिला रेखा स्यात्स न जीवति ॥ १५ ॥

मस्तक में अथवा ललाट-माथे में या वस्ति-नाभि के अघोभाग पेड़ू में द्वितीयाचन्द्र के सदृश श्यामवर्ण टेढ़ी हँसिया के समान रेखा जिसके उत्पन्न हो जायँ, वह छ महीना से अधिक नीरोग और महीना से अधिक रोगी नहीं जियेगा ॥ १५ ॥

प्रवालकान्तिसदृशो देहे यस्य मसूरिकाः ।
उत्पद्य चाशु नश्यन्ति सोऽचिरादेव नंक्ष्यति ॥ १६ ॥

जिसके शरीर में प्रवाल के सदृश मसूरिका-मसूर दाल के समान लाल लाल दाना पड़ जायँ और वे पड़कर जल्दी ही नष्ट हो जायँ तो वह एक मास से अधिक समय तक नहीं जियेगा ॥१६ ॥

ग्रीवाऽवमर्दोऽतिमहान् रसज्ञाश्वयथुस्तथा ।
ताल्वास्यकण्ठपाकश्च यस्य स्यात्स न जीवति ॥ १७ ॥

जिसकी ग्रीवा में बड़ी पीड़ा हो अर्थात् मानों ग्रीवा (घींच) टूटी जा रही हो ऐसी उत्कट पीड़ा हो तथा जिह्वा सूज जाय और तालु, मुख, कण्ठ में सूजन (शोथ) उत्पन्न हो जाय, वह अधिक दिनों तक नहीं जियेगा ॥१७ ॥

मुग्धः केशान् प्रलुञ्चेद्यो गृह्णात्यन्यांश्च निर्भरम् ।
स च स्वस्थवदाहार-वचनो मरणोन्मुखः ॥ १८ ॥

मुग्ध मूढ़ अर्ध विक्षिप्त के समान रोगी अपने बालों को पकड़ कर नोचे-खींचे, उखाड़े और अन्य किसी मनुष्य को जोर से पकड़े और स्वस्थ पुरुष के समान भोजन और बात चीत करे तो भी वह मरणो-न्मुख ही है ॥ १८ ॥

नेत्रयोर्निकटे कृत्वा मृगयेवाङ्गुलीयकम् ।
निर्निमेषस्तथोर्ध्वाक्षः स्मयते शमनं व्रजन् ॥ १९ ॥

जो रोगी नेत्रों के पास हाथ करके अपनी अंगुलीयक (मुँदरी)को ढ़ूंढता है मिथ्या ही अँगुलीयक न होनेपर भी अँगुलीयक ढ़ूंढता है अथवा निमेष रहित एकटकी लगाकर ऊपर की तरफ देखता और मुसकुराता है, कुछ २ भीतर ही भीतर अर्थात् मन ही मन में कुछ हँसता है वह यमराज के यहाँ गमनोन्मुख है ॥ १९ ॥

रुग्णो यः शयनाद् वस्त्रा-दङ्गात्कुड्यादथापि वा ।
असन्मृगयते किञ्चित् स त्रिभिर्दिवसैर्व्रजेत् ॥ २० ॥

जो रोगी खाट से अर्थात् जिस खाट पर लेटा है उसी खाट से अथवा अपने ही वस्त्र से अथवा अपने शरीर से यद्वा पास में विद्यमान भीत आदि से असत् मिथ्या ही किसी वस्तु को ढ़ूँढ़ता है वह तीन

दिन से अधिक नहीं जियेगा अर्थात् जिस समय रोग का वेग होता है, तीसरे दिन उसी समय मरेगा ॥ २० ॥

अहास्यहसनो मुह्यन् यो लेढि रदनच्छदौ ।
शीतलांघ्रिकरोच्छ्वासः स तु जीवति तद्दिनम् ॥ २१ ॥
महामोहान्धतां प्राप्तः समीपस्थं न पश्यति ।
सन्निधिस्थं स्वकं त्वन्यं मत्वाऽऽह्वयति तं व्रजन् ॥ २२ ॥

जो रोगी विना हँसी के अप्रासङ्गिक यों ही हँसे, और मोह को प्राप्त दूसरे को दूसरा समझे, अर्थात् न पहचाने । तात्पर्य यह कि कुछ-कुछ ज्ञान नष्ट हो जाय, और वा रंवार जीभ से ओठों को चाटता हो और हाथ पैर तथा श्वासोच्छ्वास शीतल-ठंढा हो तो वह केवल उसी दिन जियेगा, अर्थात् वारह या चौवीस घंटों में मर जायगा । जो रोगी अत्यन्त अन्धकार को प्राप्त हो, अर्थात् दिन के प्रकाश में अथवा रात्रि में विजली या दीप के प्रकाश में कुछ भी न देख पड़े । पास में खड़े हुए को भी न देखे, तथा पास में विद्यमान अपने ही पुत्र बान्धवादि को 'दूसरा यह कोई है' ऐसा समझे, अर्थात् अपने आदमी को न पहिचाने, तथा उस दूसरे आदमी को जाते हुये को आत्मीय ही जाता है यह मानकर 'कहाँ जाते हो' यह कर बुलावे वह उसी दिन मरेगा, उपद्रवाधिक्य से अथवा अन्धकारादि से दो घंटों के अन्दर ही मरने की कल्पना करे ॥ २१, २२ ॥

सर्वे रोगाश्च वर्धन्ते बलस्य मनसः क्षयः ।
जायते त्वरितं यस्य त्रिदिनं स न यास्यति ॥ २३ ॥

जिसके सव रोग एक दम से वढ़ जायँ अर्थात् ज्वर खाँसी शिरोवेदना आदि जो रोग हों वे एकदम बढ़ जाय, और मन तथा वल का क्षय जल्दी एकदम से नष्ट मालूम दे, वह तीन दिन नहीं जियेगा ॥ २३ ॥

अग्नेर्बलं स्वरो वर्णो वागिन्द्रियमनोबलम् ।
हीयन्ते त्वतिनिद्रस्या-प्यनिद्रस्यायुषः क्षये ॥ २४ ॥

आयु के क्षय में अर्थात् स्वल्प आयु रह जाने पर उस मनुष्य को अत्यन्त निद्रा आती है, अथवा अनिद्र-बिल्कुल ही निद्रा नहीं आती है, और अग्नि का बल-क्षुधा नष्ट होता है, स्वर-शब्द, वर्ण-शरीर की प्रभा अर्थात् सौन्दर्यादि वाक्-वाणी, स्पष्ट उच्चारण न कर सके, इन्द्रिय-चक्षुः कर्णादिक इन्द्रिय, और मन तथा बल ये जिसके कम हो जांय, ऐसे अतिनिद्र एवम् अनिद्र को समझ ले कि इसकी आयु कम अवशिष्ट है यदि अग्निमान्द्यादि पूर्वोक्त नहीं उत्पन्न हों तो चिकित्सा करे, यह पूर्ण अरिष्ट नहीं है । और यदि अग्निबलादिक नष्ट हो गया हो तो अरिष्टोत्पत्ति मानकर चिकित्सा न करे ।। २४ ।।

गोविट्चूर्णेन सदृशं चूर्णं यन्मूर्ध्नि जायते ।
सस्नेहं भ्रश्यते चैव मासमात्रं स जीवति ॥ २५ ॥

जिसके मस्तक में गोबर के चूर्ण के समान अर्थात् गोबर के कर्स (चूरा) के सदृश चूर्ण उत्पन्न हो जाय और वह चूरा स्नेहयुक्त के समान अर्थात् चिक्कण या चमकीला मस्तक से गिरे, तो वह मनुष्य केवल एक महीनामात्र फिर जियेगा, अरिष्ट की चिकित्सा नहीं होती है—यह प्रथम ही कह आये हैं ।। २५ ।।

सहस्रशश्चानुभूतं सिद्धं सविधि योजितम् ।
न सिध्येत् भेषजं यस्मिन् तं नैव तु चिकित्सताम् ॥ २६ ॥

जो प्रयोग हजारों बार अनुभव किया हुआ अचूक सिद्ध निश्चित और विधिपूर्वक पथ्यादि सेवन कराकर दिया जाता हो और फिर भी जिस रोगी को लाभ न करे, उसकी चिकित्सा न करे ।। २६ ।।

इदं मया साधुविभाव्य दर्शितं भिषग्वरैर्यद् बहुवारमीक्षितम् ।
स्ववंशगैश्चापि बहुत्र भावितं तदेव लोकोपकृतौ सुवर्णितम् ॥२७॥

इति श्रीमहामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसाददीक्षितकृते रोगिमृत्युविज्ञाने सप्तमोऽध्यायः ।

इस पूर्वोक्त अरिष्ट को अच्छी तरह अनुभव करके तथा उत्तम वैद्यों से अनेक बार देखे गये और मेरे वंशजों से अनेक बार प्रत्यक्ष अनुभूत किये गये उस अरिष्ट ज्ञान को लोकोपकारार्थ मैंने यहाँ लिखा ॥ २७ ॥

इति म० म० मथुराप्रसादकृत रोगिमृत्युविज्ञान का
सप्तम अध्याय समाप्त ।

———

अथ अष्टमोऽध्याय:

दूतस्य लक्षणेनापि व्याधिमन्तं विभावयेत् ।
साध्यः किं वाऽप्यसाध्योऽयमित्यालोच्य चरेद् गतिम् ॥१॥

अब बुलाने के लिये आये हुये दूत के लक्षण से भी रोगी का विचार करे, क्या जिस रोगी की औषध करने को जाना है, वह साध्य है अच्छा हो जायगा अथवा असाध्य है— अच्छा नहीं होगा, यह वक्ष्यमाण दूत के लक्षणों से निश्चय करके रोगी के यहाँ जाय ॥ १ ॥

नग्नोऽथवा मुक्तकेशो रुदन् शान्तिविवर्जितः ।
अभ्यागतो भवेद् दूतो न गन्तुं यततां भिषक् ॥ २ ॥

नग्न—देह पर वस्त्र नहीं पहिरे हुये, अथवा मुक्तकेश जिसके शिर के वड़े-वड़े वाल खुले हों, अर्थात् स्त्रियों के समान वड़े २ बाल हों परन्तु वे खुले हुये लटकते जिसके हों, यद्वा शान्ति रहित रोते हुये, इस प्रकार का यदि दूत आया हो तो उसके साथ नहीं जाय । रोगी को असाध्य समझकर परित्याग कर दे, अथवा न जाने को अपनी आवश्यकता दिखा दे, ॥ २ ॥

दूता आयान्ति ये वैद्ये छिन्दत्यपि च भिन्दति ।
सुप्ते वा नैव गच्छेत्तु तत्प्रभोरन्तिकं भिषक् ॥ ३ ॥

वैद्य के किसी वस्तु के काटते हुये, अथवा फाड़ते हुये यद्वा सोते हुये यदि दूत वैद्य को लेने के लिये आवे तो, वैद्य दूत के मालिक के पास औषधार्थ—चिकित्सा करने नहीं जाय, क्योंकि वह रोगी असाध्य है ॥ ३ ॥

निर्वपत्यपि पिण्डानि पितृभ्यस्तु चिकित्सके ।
वह्निं जुह्वति वा यान्ति दूता ये तान् विसर्जयेत् ॥ ४ ॥

वैद्य को पितरों के लिये पिण्डदान करते हुए, अथवा अग्निहोत्र यद्वा होम करते समय यदि रोगी का दूत वैद्य को बुलाने के लिये आवे तो उसे लौटा दे, रोगी को असाध्य समझकर न जाय ॥४॥

कथयत्यप्रशस्तानि चिन्तयत्यपि तानि वा।
वैद्ये दूता य आयान्ति रिक्तांस्तान् परिवर्तयेत् ॥ ५ ॥

वैद्य कुछ अप्रशस्त–मरण आदि की वार्ता करता हो, अथवा कुछ अप्रशस्त बातों को विचारता हो, ऐसे समय में यदि रोगी का दूत आवे तो उसे खाली लौटा दे, असाध्य समझकर चिकित्सा को न जाय ॥ ५ ॥

मृतदग्धविनष्टानि सेवमाने ब्रुवत्यपि।
वैद्ये दूताः समायातास्तैः समं न व्रजेद्भिषक् ॥ ६ ॥

यदि वैद्य के पास मृत–मरे हुये का, दग्ध-जले का, अथवा विनष्ट-खोये हुये का कार्य करते समय अथवा उसकी बात-चीत करते समय रोगी का दूत आ जाय तो उसके साथ चिकित्सा करने न जाय ॥ ६ ॥

दीनभीतद्रुतत्रस्तां मलिनां कुलटां स्त्रियम्।
त्रीन् व्याकृतांश्च षण्डांश्च दूतान् यातान्न च व्रजेत् ॥ ७ ॥

दीन-अत्यन्त दुःखिनी खिन्न, भीत–भयाकुल, द्रुत-जल्दी कर रही, त्रस्त–त्रासयुक्त, उद्विग्न घबड़ाई हुई, मलिना-मलिन वस्त्र और आकृति आदि से युक्त, कुलटा व्यभिचारिणी स्त्री, तथा तीन अङ्गों से विकृत, और षण्ड-नपुंसक हिजड़ा, इस प्रकार के आये हुये रोगी के दूतों के साथ न जाय, असाध्य समझकर रोगी के चिकित्सार्थ न जाय ॥ ७ ॥

पलालं पललं वापि बुसकेशनखान् स्पृशन्।
तत्पूर्वदर्शनं दूतं दृष्ट्वा नानुव्रजेद् भिषक् ॥ ८ ॥

पलाल–धान का पयार, पलल–मांस, बुस–भूसा, केश–बाल, नख–नाखून इनको स्पर्श करते हुये यदि दूत आ जाय तो उसको देखकर वैद्य उसके साथ न जाय ।।८ ।।

लोमास्थिविप्रमुशलान् च्युतभग्ने उपानहौ ।
शूर्पं चापि स्पृशन् दूतं पश्यन् रुग्णं न च व्रजेत् ॥ ९ ॥

लोम–रोम, अस्थि--हड्डी, विप्र--ब्राह्मण, मुशल--मूसर जिससे धान या औषधियाँ आदि कूटते हैं वह काष्ठका हो अथवा लोह पीतल आदि का हो, तथा च्युत--गिरे हुये अथवा भग्न टूटे हुये उपानह--जूतों को, या शूर्प--सूप को वैद्य छू रहा हो, यदि ऐसे समय में रोगी का दूत आ जाय तो रोगी को असाध्य समझ कर उसके साथ नहीं जावे ।। ९ ।।

मार्जनीलोष्ठभस्मानि तृणकाष्ठतुषानलान् ।
स्पृशन् दूतं विलोक्यैवा-साध्यं मत्वा न च व्रजेत् ॥ १० ॥

मार्जनी-झाड़ू, लोष्ठ-मट्टी का ढेला, भस्म-राख, तृण-तिनके पतावर आदि, जिससे छप्पर आदि बनाते हैं, काष्ठ लकड़ी, तुष-धान्य-त्वग्-भूसी, तथा अनल अग्नि- इन पूर्वोक्त में से यदि किसी को वैद्य स्पर्श कर रहा हो ओर ऐसे समय में यदि रोगी का दूत आ जाय तो उस दूत को देख कर ही रोगी को असाध्य मानकर न जाय ।।१० ।।

दूते ब्रुवति सद्वैद्यः पश्येच्चेदशुभं क्वचिद् ।
असाध्यं रोगिणं बुद्ध्वा न च गच्छेत्कथंचन ॥ ११ ॥

उत्तम वैद्य रोगी के दूत को हाल कहते समय यदि कहीं पर कुछ अशुभ कार्य देखे तो रोगी को असाध्य समझ कर किसी प्रकार भी न जाय, अर्थात् द्रव्य के लालच में आकर जाने से अयश आदि होगा ।। ११ ।।

भेददाहविनाशाद्यै-रशुभैर्वचनैर्युतम् ।
कुतोऽपि शृणुयाद् वाक्यं दूतोक्ते तं न च व्रजेत् ॥ १२ ॥

दूत के कथन समय में अर्थात् जिस समय रोगी का हाल और वैद्य को चलने को कहता हो उस समय यदि भेद, दाह, विनाश इत्यादि अशुभ शब्दों से युक्त वाक्य कहीं से भी सुने तो फिर उस दूत के साथ न जाय । रोगी को आसाध्य मरणासन्न समझे ॥ १२ ॥

दूतसंवादकाले स्याद् अशुभं किमपीह यत् ।
श्रुत्वाऽनुभूय दृष्ट्वा तत् तेन साकं न च व्रजेत् ॥ १३ ॥

दूत से वात चीत करते समय जो कुछ भी अशुभ हो जाय तो उस अशुभ को सुन कर अनुभव कर अथवा देखकर उस दूत के साथ न जाय ॥ १३ ॥

अयुक्तभाविवाक्येषु वाक्यकालेऽथवा पुनः ।
दूतानां व्याहृतं श्रुत्वा वैद्यो मरणमादिशेत् । १४ ॥

अयुक्त-खराब होनहार सूचक वाक्यों के कहने पर, अर्थात् दूत के कथन के समय कोई मध्य में आकर अयुक्त होनहार वात कह दे, अथवा दूतोक्ति के अनन्तर कह दे तो वैद्य दूत के वचन को सुनकर कह दे कि यह रोगी असाध्य है, यह नहीं बचेगा ॥ १४ ॥

मुनिप्रणीतं चरकादिवर्णितं
मयाऽऽत्मसात्कृत्य तदेव दर्शितम् ।
विलोक्य यन्नैव विमुह्यते क्वचिद्
भिषग्वरो रोगिषु कालनिर्णये ॥ १५ ॥

इति श्री महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसादकृते
रोगिमृत्युविज्ञाने अष्टमोऽध्यायः

मुनि-श्री पतञ्जलि महर्षि आदि से कहा गया, चरकादिक ग्रन्थों में विभिन्न स्वरूप से वर्णन किया गया उस अरिष्ट को मैंने अपनी काव्य रचना के द्वारा दिखाया है, जिसको देखकर उत्तम वैद्य रोगी के काल निर्णय में अर्थात् बचेगा अथवा नहीं, और यदि नहीं बचेगा तो कितने दिन में मरेगा, इत्यादि कालनिर्णय में मोह भ्रम (अन्य प्रकार के निर्णय) को नहीं प्राप्त होता, अर्थात् इस अरिष्ट ज्ञानानुरूप उसका निर्णय सर्वथा सत्य होता है ॥ १५ ॥

इति श्री० म० म० पं० मथुराप्रसादकृत रोगिमृत्युविज्ञान का
अष्टम अध्याय समाप्त ।

—:० ❀ ०:—

अथ नवमोऽध्यायः

उक्तो दूतविचारोऽयम् अथ मार्गगतौ ब्रुवे।
जातेऽपशकुने यस्मिन् तद् दृष्ट्वाऽपसरेद् भिषक् ॥ १ ॥

मैंने इस दूत विचार को कहा, अब मार्ग में जाते हुये उत्पन्न अपशकुनों को कहता हूँ। जिनको देखकर वैद्य रोगी के यहाँ न जाकर लौट जाय ॥१ ॥

स्खलनोत्क्रुष्टपतनम् आक्रोशं क्षुद्विगर्हणे।
प्रतिषेधप्रहारौ वा दृष्ट्वा गच्छन्न च व्रजेत् ॥ २ ॥

स्खलन-किसी वस्तु का भूलना अथवा अपना या दूसरे का रपट कर गिरना, उत्क्रुष्ट-चिल्लाना दूसरे को झाड़ना डाटना आदि, पतन-किसी का गिरना, आक्रोश-गाली आदि देना, क्षुत्-छिक्का, किसी की भी छिक्का छीं का होना, विगर्हण-किसी की भी निन्दा, प्रतिषेध रोकना, अपना रोकना अथवा दूसरे से दूसरे का रोकना, अर्थात् 'नहीं जाओ' इत्यादि प्रकार से दूसरे का रोकना और प्रहार मारपीट अथवा किसी पशु आदि का प्रहार देखकर जाता हुआ भी नहीं जाय किन्तु लौट आवे। यह मार्ग गत शकुन विचार ग्राम के बाहर तक ही लेना। यह एक सिद्धान्त है। एक दिन के आरम्भिक विश्राम स्थान तक लेना यह अन्य लोगों का है, चलते हुये तुरत सामने हो, किसी का ऐसा भी सिद्धान्त है ॥ २ ॥

छत्रोष्णीषोत्तरासङ्गं वस्त्रोपानद्युगं तथा।
नष्टं निपतितं ज्ञात्वा परिवर्तेत् न च व्रजेत् ॥ ३ ॥

छत्र–छतरी, उष्णीष पगड़ी सिर में बाँधने का साफा टोपी आदि, उत्तरासङ्ग कन्धे पर डालने का दुपट्टा आदि, वस्त्र पहिरने के या

विछाने के विशेष उपयुक्त वस्त्र अथवा उपानद्युग अर्थात् दोनों जूतों के (इन पूर्वोक्त में किसी के) भी गिर जाने से अथवा नष्ट हो जाने से सर्वथा छत्रोष्णीषादि फट जाने से अनुपयुक्त प्राय हो जाने से यद्वा खो जाने से चुराजाने से परिवर्तित मार्ग से ही लौट जाय रोगी के यहाँ न जाय ।। ३ ।।

प्रासादवैजयन्त्योर्वा चूर्णानां पतनं तथा ।
हतानामशुभं श्रुत्वाऽध्वनोपि परिवर्त्तताम् ॥ ४ ॥

प्रासाद–राजन्दिर अथवा देवमन्दिर यद्वा उत्तम मकान अथवा वैजयन्ती पताका का एवं चूर्ण चूना का गिरना देखकर अथवा मारे गये का यद्वा मरण आदि अशुभ सुन कर जाता हुआ भी वैद्य मार्ग से लौट आवे. असाध्य अनिष्ट समझे ।। ४ ।।

मार्जारेणाहिना वाऽपि मार्गच्छेदः शुना भवेत् ।
न गच्छेच्छिन्नमार्गेण पश्यन् स्वीयाशुभं भिषक् ॥ ५ ॥

मार्जार–विल्ली से, अहि-सर्प से अथवा श्व-कुत्ता से, यदि मार्गच्छेद हो जाय तो वैद्य उस छिन्न मार्ग से जाने में अपने अशुभ को देखता हुआ न जाय । तात्पर्य यह है कि यदि पूर्वोक्त प्राणियों से छिन्न मार्ग से वैद्य जायगा तो निश्चितरूप से उसका अशुभ अनिष्ट होगा ।। ५ ।।

शृगालोलूकसिंहानां क्रूराणां शृणुयाद् गिरम् ।
दीप्तदिक्षु प्रपन्नां चेद् आतुरं न व्रजेद् भिषक् ॥ ६ ॥

उत्तम दिशा में अर्थात् समुज्ज्वलित प्रकाशमान दिशाओं में शृगाल उलूक अथवा क्रूर सिंहादिकों के यदि शव्द को सुने तो फिर आतुर (रोगी) के यहाँ न जाय, किंतु मार्ग से ही लौट जाय ।। ६ ।।

आसनं शयनं यानं पश्येदुत्तानमध्वनि ।
अन्यच्चाप्यप्रशस्तं वा दृष्ट्वाऽऽगच्छेत्परावृतः ॥ ७ ॥

आसन-बैठने का आस्तरण, शयन-खाट, यान-सवारी घोड़ा, वहल, पीनस, मोटर आदि मार्ग में उलटी पड़ी हुई देखे अथवा अन्य कोई अप्रशस्त वस्तु देखे तो उसे देख कर लौट कर आजाय, रोगी के यहाँ नहीं जाय ॥ ७ ॥

आतुरस्य गृहं गच्छन् मार्गे पश्येदमङ्गलम् ।
तदा मार्गाद् निवर्तेत स्वयशोरक्षया भिषक् ॥ ८ ॥

सद्वैद्य आतुर बीमार के यहाँ जाता हुआ यदि मार्ग में कोई अमङ्गल कार्य को देखे तो अपने यश की रक्षा चाहने वाला वैद्य मार्ग से ही लौट जाय ॥ ८ ॥

यस्यातुरस्य भवने भिद्यन्ते वा पतन्ति वा ।
पात्राणि वैद्यसंप्राप्तौ शब्दं श्रुत्वैव तं त्यजेत् ॥ ९ ॥

वैद्य के पहुँचते ही जिस आतुर-बीमार के मकान में पात्र गिरते हैं, अथवा टूटते फूटते हैं तो शब्द को सुनकर वैद्य उसके यहाँ से तुरत लौट जाय ॥ ९ ॥

स्वकप्रवेशवेलायां मृद्वीकवृपसर्पिषाम् ।
पूर्णकुम्भज्वलनयोर्निर्गच्छेन्निर्गतौ भिषक् ॥ १० ॥

वैद्य अपने प्रवेश समय में रोगी के घर से अंगूर बैल अथवा घृत तथा जलादि से भरा हुआ घड़ा यद्वा अग्नि को निकलते हुये देखे, तो उस रोगी को असाध्य समझ कर उसके घर को छोड़ दे ॥

स्त्रीणां सुवासिनीनां च रत्नब्राह्मणयोरपि ।
देवताप्रतिमानां च निर्गच्छेन्निर्गतौ भिषक् ॥ ११ ॥

वैद्य रोगी के घर से सौभाग्यवती विवाहित स्त्रियों को तथा रत्नों को या ब्राह्मण को अथवा देवता प्रतिमा को निकलते हुये देखे तो रोगी को असाध्य समझ कर उसके यहाँ से निकल जाय ॥ ११ ॥

पात्राण्यनलपूर्णानि मुण्डिनो जटिनोऽथवा ।
प्रविशन्नेव पश्येच्चेत् मुमूर्षुं रोगिणं वदेत् ।। १२ ।।

यदि वैद्य रोगी के घर में प्रवेश करते हुये, अग्नि से भरे हुये अँगीठी आदि पात्रों को अथवा जटाधारी साधुओं को यद्वा मुण्डी-मूँड मुँडाये सन्यासियों को रोगी के घर से निकलते हुये देखे तो रोगी को मरणासन्न समझ–कह दे कि यह असाध्य है, जल्दी ही मर जायगा ।। १२ ।।

वस्त्रं यानादि गमनं रोदनं शयनं तथा ।
भोजनामङ्गले पश्येत् प्रविशन् तद्गृहं त्यजेत् । १३ ।।

इति श्री महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसाद कृते
रोगिमृत्युविज्ञाने नवमोऽध्यायः ।

यदि वैद्य रोगी के घर में प्रवेश करते हुये, वस्त्र, यान-घोड़ा रथ वहल मोटर आदि निकलते देखे तथा किसी को वाहर जाते हुये देखे अथवा रोना, शयन करना यद्वा खट्वा पर लेटना तथा भोजन करना, किंवा अन्य कोई अमङ्गल कार्य देखे तो रोगी को मरणासन्न समझ कर उसके घर को छोड़ दे ।। ९३ ।।

इति श्री म० म० मथुराप्रसादकृत रोगिमृत्युविज्ञान का
नवम अध्याय समाप्त ।

—:०:—

अथ दशमोऽध्यायः

इदमौत्पातिकं प्रोक्तं वैद्यस्तत्साधु भावयेत् ।
अथ स्वप्नं शुभं वक्ष्ये येनारोग्यं प्रजायते ॥ १ ॥

यह औत्पातिक-उत्पात जन्य अशुभ शकुन का विचार किया, वैद्य इस औत्पातिक विचार को उत्तम प्रकार से भावना करे। अब उत्तम स्वप्न के फल को कहता हूँ, जिसके देखने से रोगी नीरोगिता को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् सर्वथा रोगरहित स्वस्थ हो जाता है ॥ १ ॥

शुभदूतः सुशकुनम् आरोग्यस्यातिसूचकम् ।
सर्वमेव मया वक्ष्ये भिषक्सिद्धेः सुबोधकम् ॥ २ ॥

आरोग्य के सूचक उत्तम दूत के स्वरूपों को और जाते हुये वैद्य के उत्तम शकुनों को मैं कहूँगा, जो कि वैद्य की सिद्धि के बोधक हैं, अर्थात् रोगी नीरोग होगा अथवा नहीं इसके बोधक हैं ॥ २ ॥

आतुरो यदि चारोहेत् शैलप्रासादवेश्मसु ।
गजाश्वगोमनुष्येषु स्वप्ने सौख्यं तदा भवेत् ॥ ३ ॥

रोगी यदि स्वप्न में पहाड़, राजभवन, मकान, हाथी, घोड़ा, बैल मनुष्य के कन्धे पर चढ़े तो सुख पा कर, रोग रहित सुस्थ हो जायगा ॥ ३ ॥

सूर्याचन्द्रमसोर्वह्नेर्गोद्विजादियशस्विनाम् ।
मनुष्याणां च तरणं स्वप्ने पश्येत्सुखं व्रजेत् ॥ ४ ॥

यदि रोगी स्वप्न में सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, गाय-बैल, ब्राह्मण अथवा यशस्वी लोक प्रसिद्ध मनुष्यों को समुद्र-नदी-तालाब आदि किसी स्थान पर तैरते हुये देखे तो सुख और नीरोगता को प्राप्त हो ॥४॥

दुःखाद् विनिःसृतिं स्वप्ने समृद्धिं यदि वेक्षते ।
तदेष्टसिद्धिं लभते सुखमारोग्यसंपदौ ॥ ५ ॥

यदि रोगी स्वप्न में दुःख से निकलना अथवा समृद्धि को देखता है तो इष्ट अभिमत कार्यसिद्धि को तथा सुख, आरोग्य और संपत्ति को पाता है ॥ ५ ॥

देवैर्वा पितृभिः स्वप्ने प्रसन्नैरभिभाषणम् ।
कुर्वाणो लभते सौख्यमारोग्यसुतसंपदः ॥ ६ ॥

यदि कोई मनुष्य अथवा रोगी देवताओं के साथ अथवा प्रसन्न पितरों के साथ बात-चीत करता है तो सुख, आरोग्य, सन्तान और संपत्ति को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

वस्त्राणां शुभ्रवर्णानां विमलस्य ह्रदस्य वा ।
स्वप्ने निरीक्षमाणोऽसौ यात्यारोग्यसुखास्पदम् ॥ ७ ॥

यदि कोई रोगी स्वप्न में स्वच्छ सफेद वस्त्रों को अथवा निर्मल ह्रद जल के गर्त स्थान को देखता है तो आरोग्य सुख सम्पत्ति को पाता है ॥ ७ ॥

गरलं पललं मत्स्यं दर्पणं वाऽऽतपत्रकम् ।
स्वप्नेऽमेध्यं च गृह्णानो लाभं नैरोग्यमाप्नुयात् ॥ ८ ॥

कोई मनुष्य यदि स्वप्न में गरल-विष, पलल-मांस, मत्स्य-मछली एवं दर्पण, छत्र अथवा अमेध्य विष्ठा पूय आदि किसी वस्तु को ग्रहण करता है तो लाभ-धनादि लाभ को और रुग्ण मनुष्य नीरोगता को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

पुष्पाणां शुभ्रवर्णानां स्वप्ने स्याद्दर्शनं यदि ।
तदाऽऽरोग्यं विजानीयात् स्वस्थः सौख्यमुपैष्यति ॥ ९ ॥

यदि शुभ्रवर्ण के सफेद पुष्पित अर्थात् खिले हुये फूलों का स्वप्न में दर्शन हो तो आरोग्य हो और स्वस्थ मनुष्य सुख को प्राप्त हो ॥ ९ ॥

गवाश्वरथयानैश्च पूर्वस्मादुत्तरं व्रजेत् ।
उत्तरात्पूर्वमथवा गच्छेत्स्वप्ने सुखं भवेत् ॥ १० ॥

गो-वृषभ, घोड़ा, रथ, यान-मोटर यादि द्वारा 'पूर्व से उत्तर तरफ अथवा उत्तर से पूर्व तरफ स्वप्न में जाय तो सुख को प्राप्त हो ॥ १० ॥

उत्थानं पतितस्यापि रोदनं द्विट्तिरस्कृतिम् ।
निष्पीडनं च शत्रूणां स्वप्ने दृष्ट्वा सुखं व्रजेत् ॥ ११ ॥

यदि स्वप्न में, गिरे हुए का उठना, रोना, शत्रु का तिरस्कार अथवा शत्रुओं का दुःख निष्पीडन देखे तो सुख को प्राप्त होगा, अर्थात् उक्त कार्यों को देख कर रोगी आरोग्य को और स्वस्थ समृद्धि को पायेगा ॥ ११ ॥

आयुः सुखं वलं चापि नैरोग्यं लभते महत् ।
भावान् स्वाभिमतांश्चापि मनुष्यः शुभलक्षणः ॥ १२ ॥

नैरोग्य से आयु सुख वल को वृहत् समृद्धि को पाता है, और शुभ लक्षण अर्थात् उत्तम लक्षण युक्त स्वप्नवाला मनुष्य स्वाभिमत भावों को मनोभिलषित कार्यों को पाता है ॥ १२ ॥

अरिष्टं दूतलक्ष्माणि मार्गोत्पातिकमेव च ।
स्वप्नाः शुभाशुभाश्चापि पूर्वमेतद्धि वर्णितम् ॥ १३ ॥

अरिष्ट-मरण सूचक चिह्न अर्थात् कितने दिनों में किस चिह्न से मरेगा, इस अरिष्ट ज्ञान को तथा दूत लक्षण को अर्थात् किस प्रकार के दूत से कार्यसिद्धि होगी और किस प्रकार के दूत से नहीं, एवं मार्ग में समुत्पन्न उत्पातों को तथा शुभ अशुभ स्वप्नों का वर्णन किया ॥ १३ ॥

सद्दूतशकुने वैद्य-कर्तव्यमपि दर्शये ।
येनादरं धनं कीर्तिं लभतेऽसौ भिषग्वरः ॥ १४ ॥

अब उत्तम दूत, शकुन का, तथा वैद्य के कर्तव्य का वर्णन करता हूँ जिसके ज्ञान से वह उत्तम वैद्य होता हुआ आदर धन और कीर्ति यश को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

स्वाचीरं हृष्टमव्यङ्गजातिवेषक्रियान्वितम् ।
शुक्लवस्त्रं भिषग् दूतं निर्दिशेत्कार्यसिद्धये ॥ १५ ॥

उत्तम अपने आचार से युक्त, हृष्ट, पुष्ट, हीनाङ्ग से रहित अर्थात् काना लंगडा आदि दोष रहित, जाति के अनुरूप वेश क्रिया से युक्त शुक्ल वस्त्र धारण किये हुये अर्थात् सफेद कपड़े पहिने हुए ऐसे दूत को कार्यसिद्धि का सूचक समझे ॥१५॥

सद्दूतस्य परिज्ञान-मिदं सम्यगुदीरितम् ।
अथ सच्छकुनं ब्रूयां कार्यसिद्धिप्रदायकम् ॥ १६ ॥

यह उत्तम दूतके परिज्ञान को कहा; अब कार्यसिद्धिदायक उत्तम शकुनों को कहूँगा ॥ १६ ॥

दधिरत्नद्विजातीना-मक्षतानां नृपस्य वा ।
वृषाणां पूर्णकुम्भानां दर्शनं कार्यसिद्धिदम् । १७ ॥

रोगी के यहाँ यात्रा के समय यदि दही, अन्न, ब्राह्मण, अक्षत, राजा, वृषभ अथवा पूर्ण कुम्भ—अर्थात् जल से भरा घड़ा मिल जाय तो कार्य सिद्ध समझे तात्पर्य यह है कि इनका दर्शन कार्यसिद्धि का दायक होता है ॥ १७ ॥

सुरध्वजपताकानां फलानां सितवाजिनः ।
वर्धमानकुमारीणां दर्शनं कार्यसाधकम् ॥ १८ ॥

तथा सुरध्वज-देवता की ध्वजा, अथवा पताका, (ध्वजा वस्त्र की होती है, पताका स्वर्णादि की होती है।) अथवा फल, सफेद घोड़ा एवं वर्द्धमान कुमारियों का यदि दर्शन हो तो कार्य को सिद्ध ही समझे॥ १८॥

भिक्षुकस्य ज्वलद्वह्ने-र्बद्धस्यैकपशोरपि।
सितानां कुसुमानां च दर्शनं सुफलप्रदम्॥ १९॥

भिक्षुक का, चलती हुई आग का, बँधे हुये एक पशु का और सफेद फूलों का दर्शन, कार्य सिद्धि के उत्तम फल का देने वाला होता है॥ १९॥

मोदकान्नजलादीनां प्रापणं कार्यसाधकम्।
उद्धृतायाः पृथिव्याश्च दर्शनं कार्यसाधकम्॥ २०॥

स्वादिष्ट मोदक अन्न और जल शर्वत इत्यादि की प्राप्ति तथा खोद कर उठती हुई पृथिवी अर्थात् उठती हुई भीत का दर्शन कार्यसिद्धि दायक है। अर्थात् यात्रा—समय इनके दर्शन होने से अवश्य कार्य सिद्ध होता है॥ २०॥

दृष्ट्वैव मन्यतां सिद्धिं नृभिर्युक्तां स्त्रियं हयीम्।
सवत्सामपि धेनुं च सुपूर्णं शकटं भिषक्॥ २१॥

वैद्य-रोगी के यहाँ जाता हुआ मार्ग में मनुष्यों से युक्त स्त्री को, घोड़ी को, वत्स से युक्त धेनु को अथवा भरे हुये शकट गाड़ी को देखकर निश्चित ही कार्य सिद्धि को समझे॥ २१॥

पिकसारससिद्धार्थ-हंसानां प्रियवादिनाम्।
चापाणां शिखिनां शब्दं श्रुत्वा मन्येत सत्फलम्॥ २२॥

पिक—कोयल, सारस, सिद्धार्थ-वदक, हंस, तथा मनोहर बोलते हुये अन्य पक्षियों के एवं चाष-घर की चिड़िया, शिखी-मयूर, इनके

शब्द को यात्रा समय में सुनकर सफल कार्य को माने अर्थात् जाते हुये मार्ग में सुनने पर भी शुभ फल के देने वाले होते हैं ॥ २२ ॥

दार्वाघाटकलावाना-मन्येषां चापि पक्षिणाम् ।
सुस्वरैरेव जानीयात् सिद्धं कार्यं तु निश्चयात् ॥ २३ ॥

दार्वाघाट (कठफोरवा नाम से लोक में प्रसिद्ध है) तथा लाव- (लालमुनिया नाम से प्रसिद्ध है) एवं और भी पक्षियों के उत्तम शब्दसे निश्चित कार्य को सिद्ध समझे ॥ २३ ॥

छागमत्स्यप्रियंगूँश्च द्विजशंखघृतानि च ।
दीपदर्पणसिद्धांश्च दृष्ट्वा निश्चिनुयात् शुभम् ॥२४॥

छाग-बकरा, मछली, प्रियंगु दी फल, ब्रांह्मण, शंख, घृत, दीप दर्पण और सिद्ध पुरुष को देखकर शुभकार्य का निश्चय करे । अर्थात् यात्रा समय इन्हें देखकर निश्चित रूप से सफलता समझे ॥ २४ ॥

सुगन्धं रोचनं किञ्चित् शुक्लवर्णं विलोकयन् ।
सिद्धिं निश्चिनुयात् सर्वं कार्यं मार्गगतो भिषक् ॥ २५ ॥

मार्गगत—मार्ग में प्राप्त अथात् मार्ग में जाते हुये वैद्य यदि सुगन्धित पुष्प इत्र आदि किसी वस्तु को अथवा गोरोचन किंवा शुक्लवर्ण किसी वस्तु को देखे तो सिद्ध सब कार्यका निश्चय करे अर्थात् सिद्ध ही कार्य को समझे ॥ २५ ॥

मृगपक्षिमनुष्याणां प्रशस्ताश्च गिरो गवाम् ।
भेरीमृदङ्गशङ्खानां शब्दाः सिद्धिप्रदायकाः ॥ २६ ॥

मृग पक्षि यद्वा मनुष्यों के प्रशस्त-उत्तम वचन, अथवा गौ की उत्तम वाणी किंवा भेरी, मृदङ्ग, शंख इनका शब्द सिद्धि का दायक है, अर्थात् इनके शब्द, यात्रा करते हुये मार्ग में सुनने से कार्य सिद्ध होता है ॥ २६ ॥

वेदशब्दाः सुखो वायुः स्वच्छः पुण्याहनिःस्वनाः ।
मार्गे गृहप्रवेशे स्युः सिद्धं कार्यं ध्रुवं भवेत् ॥ २७ ॥

वेद के शब्द, स्वच्छ सुखावह वायु अर्थात् शीतल मन्द सुगन्ध वायु, तथा पुण्याहवाचन अर्थात् आशीर्वादात्मक शब्द मार्ग में अथवा गृह प्रवेश के समय सुने तो निश्चय से कार्य सिद्ध समझे ॥ २७ ॥

आतपत्रपताकानां ध्वजानां चाप्यभिप्लुतिम् ।
उत्क्षेपणं निरीक्षेत सिद्धमेवेति भावयेत् ॥ २८ ॥

आतपत्र-छत्र पताका, ध्वजा इनमें से किसी की भी अभिप्लुति अथवा ऊपर को उठना देखे तो निश्चय से कार्य सिद्ध है, यह भावना करे ॥ २८ ॥

दूतस्वप्नपरिज्ञानमरिष्टानां परीक्षणम् ।
सदसच्छकुनानां च ज्ञानं सम्यगुदीरितम् ॥ २९ ॥

दूत का परिज्ञान अर्थात् कैसे किस प्रकार के दूत से कार्य सिद्ध होता है और किस प्रकार के दूत से कार्य नहीं होता है, एवम् स्वप्नों का परिज्ञान कैसे स्वप्न से शुभ फल होता है और कैसे स्वप्न से अशुभ फल होता है, इसका परिज्ञान कहा। तथा अरिष्ट ज्ञान-नियत मरण आख्यापक चिह्नों का परिज्ञान, अर्थात् किस प्रकार के चिह्न से शरीर में निशान पड़ जाने से कितने दिनों में यह रोगी मर जायगा इसकी परीक्षा-पहिचान का वर्णन किया, और सत् असत् शकुनों का ज्ञान इत्यादि सबका अच्छे प्रकार से वर्णन किया ॥ २९ ॥

नापृष्टो मरणं ब्रूयात् पृष्टोऽपीतस्ततो न च ।
रुग्णस्य संमुखं नैवं कदाचिदपि संवदेत् ॥ ३० ॥

सद् वैद्यको उचित है, कि बिना पूछे मरण को न कहे और पूछने पर भी इतस्ततः प्रत्येक आदमी से न कहे, पूछने पर भी बीमार के

सामने कभी भी न कहे और यह मर जायगा ऐसी बात भी न करे ॥ ३० ॥

यतो हि जायते क्लेशो वन्धूनामातुरस्य च ।
अरिष्टनिश्चये ब्रूयाच् श्रद्धालून् भावुकाञ्जनान् ॥ ३१ ॥

क्योंकि मरण सुनकर रोगी के वन्धु कुटम्बियों को दुःख होता है और रुग्ण वीमार को भी अपने को मरणासन्न सुनकर दुःख होता है। परन्तु अरिष्ट का सर्वथा निश्चय हो जाने पर अपने श्रद्धालु भावुक योग्य सद् व्यक्तियों से अर्थात् अच्छे प्रतिष्ठित पुरुषों से कह दे ॥ ३१ ॥

अरिष्टबोधः समुदीरितो मया
यतो भिषक् तिष्ठति सर्वतोऽग्रणीः ।
जनेषु पूज्यो यशसा विभूषित —
श्चिकित्सकैः साधु सदैव कीर्त्यते ॥ ३२ ॥

इति श्रीसर्वतन्त्रस्वतन्त्र-विद्यावारिधि-महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसाददीक्षितकृते रोगिमृत्युविज्ञाने दशमोऽध्यायः समाप्तः ।

मैंने अरिष्ट ज्ञान को उत्तम प्रकार से कहा, जिसके जानने से वैद्य सब वैद्यों में श्रेष्ट होता है, जन समुदाय में पूज्य होता है, यशस्वी यश से शोभायमान लोग उसकी सदैव प्रशंसा करते हैं, और सब वैद्य भी उसको सदा ही अच्छा मानते हैं ॥ ३२ ॥

इति श्री सर्वशास्त्रपारंगत विद्यावारिधि म० म० पं० मथुरा-प्रसाद कृत रोगिमृत्युविज्ञान का दशम अध्याय समाप्त ।

❀ समाप्तश्चेदं रोगिमृत्युविज्ञानम् ❀